॥ श्रीहरिः ॥

1433▲

साधना-पथ

जयदयाल गोयन्दका

॥ श्रीहरिः ॥

साधना-पथ

त्वमेव माता च पिता त्वमेव
त्वमेव बन्धुश्च सखा त्वमेव।
त्वमेव विद्या द्रविणं त्वमेव
त्वमेव सर्वं मम देवदेव॥

जयदयाल गोयन्दका

॥ श्रीहरिः ॥

नम्र निवेदन

ब्रह्मलीन परम श्रद्धेय श्रीजयदयालजी गोयन्दकाकी पुस्तक 'साधना-पथ' प्रेमी, भक्त, साधक, गृहस्थ और विरक्त सभी प्रकारके आध्यात्मिक जिज्ञासुओंके हाथोंमें समर्पित करते हुए हमें अपार हर्षका अनुभव हो रहा है।

प्रस्तुत पुस्तक श्रीजयदयालजी गोयन्दकाके कई प्रवचनोंका संग्रह है, जिसमें प्रभुको प्राप्त करनेके सम्बन्धमें हर तरहसे सूक्ष्म विचार किया गया है। 'ध्यान और नामजप' शीर्षकके अन्तर्गत साधनाके महत्त्व और उसकी विधियोंका विस्तृत उल्लेख है। ध्यानयोगका अभ्यास करनेवाले साधकोंके लिये यह लेख बहुत उपयोगी है। 'साधन और निष्ठा' में 'साधन' की सफलताके लिये 'निष्ठा' की अपरिहार्य आवश्यकतापर विशेष बल दिया गया है। 'प्रेमी भक्तकी स्थिति' और 'प्रभुका सौन्दर्य'— इन दोनों लेखोंमें भक्ति-रसकी धारा प्रवाहित हुई है। इस पुस्तकमें और भी बहुत-से महत्त्वपूर्ण प्रवचन हैं। भक्त और ज्ञानी; गृहस्थ और विरक्त सभी प्रकारके साधकोंके लिये उपयोगी सामग्री इस पुस्तकमें समाहित है।

आशा है कि सभी पाठक पुस्तकमें दी हुई मार्मिक बातोंसे अवश्य ही लाभान्वित होंगे।

—प्रकाशक

॥ श्रीहरिः ॥

विषय-सूची

विषय **पृष्ठ-संख्या**

१. चेतावनी ५
२. सर्वत्र ईश्वर-दर्शन १५
३. शरणागति ही सुगम साधन है २१
४. व्यापारमें सत्यताकी आवश्यकता ३०
५. संगका प्रभाव ४१
६. वैराग्य होनेमें स्थानका प्रभाव ४५
७. परमात्माके ध्यान एवं चिन्तनकी महिमा ४८
८. भगवान् सर्वोपरि हैं ५४
९. कलियुगमें भगवन्नाम-महिमा ५५
१०. संसारके सम्बन्धसे ही दुःख ५७
११. श्रद्धाकी विशेषता ५९
१२. विविध प्रश्नोत्तर ६५
१३. ब्राह्मणोंके प्रति सद्व्यवहारकी प्रेरणा ६८
१४. वैराग्यसे उपरति एवं ध्यान ७१
१५. पापोंका फल दुःख ७६
१६. भगवान्‌के गुण-प्रभाव ८१
१७. बालकोंके लिये शिक्षा ८९
१८. धारण करनेयोग्य आवश्यक तीन बातें ९५
१९. साधन और निष्ठाकी आवश्यकता १००
२०. प्रेमी भक्तकी स्थिति १०७
२१. प्रभुका सौन्दर्य १११
२२. ध्यान और नामजपकी विधियाँ १२०

॥ श्रीहरिः ॥

चेतावनी *

सर्वस्वका दान भी एक दिनके भजन-ध्यानके बराबर नहीं है। महापुरुषोंका दर्शन यानी उनको महापुरुष समझकर उनका दर्शन एवं चरण-स्पर्श, भाषण, तत्त्व-रहस्यकी बात सुननी—इनसे विशेष लाभ होता है। यदि किसीको ऐसा अवसर प्राप्त नहीं होवे तो इस प्रकार मानसिक कर सकता है। बातचीत मानसिक करनेसे भी बहुत लाभ है। चिन्तन मानसिक कर सकते हैं। स्वप्नकी अपेक्षा मानसिकसे ज्यादा लाभ है।

कबिरा नौबत आपनी दिन दस लेहु बजाइ।
यह पुर पट्टन यह गली बहुरि न देखहु आइ॥
मरोगे मर जावोगे कोइ न लेगा नाम।
ऊजड़ जाय बसाओगे छाड़ बसन्ता गाम॥
काल भजन्ता आज भज आज भजन्ता अब।
पलमें परलय होयगी बहुरि भजैगो कब॥
केशव केशव कूकिये न कूकिये असार।
रात दिवसके कूकते कबहुँ तो सुने पुकार॥

ये दोहे चेताते हैं, जागो, चेतो, उठो, इस प्रकार सबको जागना चाहिये। हर एक मनुष्यको विचारना चाहिये कि समय जा रहा है, मृत्यु निकट आ रही है, सौ वर्षके भीतर-भीतर मरना पड़ेगा। किसीके पास ऐसा प्रबन्ध नहीं है जो मरना न पड़े। एक पलका भी भरोसा नहीं है। जहाँ इतनी पोल है। ऐसे स्थानमें रहकर भी काम नहीं बनाया, यह कितनी मूर्खता है।

---

* प्रवचन—मिति वैशाख कृष्ण १३, संवत् १९९०, दोपहर, स्वर्गाश्रम।

यहाँपर कोई काम नहीं है, गंगाका किनारा, गंगाकी रेणुका, गंगाजल, वटवृक्ष, चारों तरफ वन, पहाड़ और पुरुषोत्तम भगवान्‌के प्रेमभावकी कथा, अच्छे पुरुषोंका संग—ऐसा संग मिलकर भी जो अपना काम न बना सके, ऐसे व्यक्तिके लिये कहा गया है—

सो परत्र दुख पावइ सिर धुनि धुनि पछिताइ।
कालहि कर्महि ईस्वरहि मिथ्या दोष लगाइ॥

बुद्धिमान् पुरुष तो वही है जो इस प्रकार समझकर अपना एक मिनट समय भी व्यर्थ नहीं बितायेगा। उसे तो पश्चात्ताप करना नहीं पड़ेगा। बाकी सभीको तो पश्चात्ताप करना है। समय तेजीसे जा रहा है, जबतक मृत्यु दूर है, जबतक सद्बुद्धि है, तबतक जो साधन करना हो सो कर लो।

वहाँ कोई अंधेरखाता नहीं है, पाई-पाईका लेखा है। अपना समय सावधानीके साथ बिताना चाहिये। अपने लिये यह बात भी नहीं है कि हम बूढ़े होकर ही मरेंगे।

कुछ बड़ी आयुके लोग कहते हैं कि बड़ी उम्रमें भजन करना चाहिये, सो ठीक है। उनसे पूछो कि आप कितना भजन करते हैं। छोटी उम्रमें ही भजन-ध्यान करना चाहिये। बड़ी उम्र होनेके बाद क्या होगा? नाना प्रकारकी तृष्णा-वासना बढ़कर उसे नरकमें गिरा देते हैं। उत्तम काम तो पहले नम्बरपर करना चाहिये। मनुष्य-शरीर जिस लिये मिला है उस कामको तो पहले कर लेना चाहिये। एक नम्बरके कामको आप पहले क्यों नहीं करते हैं? इसमें तीन कारण हैं अज्ञता, अश्रद्धा और साधनमें तत्परताकी कमी।

अज्ञश्चाश्रद्दधानश्च संशयात्मा विनश्यति।
नायं लोकोऽस्ति न परो न सुखं संशयात्मनः॥

(गीता ४।४०)

विवेकहीन और श्रद्धारहित संशययुक्त परमार्थसे अवश्य भ्रष्ट हो जाता है। ऐसे संशययुक्त मनुष्यके लिये न यह लोक है, न परलोक है और न सुख ही है।

इससे बढ़कर और क्या मूर्खता होगी कि अपना असली काम नहीं कर रहे हैं। अश्रद्धा यह है कि ईश्वरके होनेके विषयमें शंका हो रही है। यहाँ श्रद्धाकी आवश्यकता है।

श्रद्धावाँल्लभते ज्ञानं तत्परः संयतेन्द्रियः।
ज्ञानं लब्ध्वा परां शान्तिमचिरेणाधिगच्छति॥

(गीता ४। ३९)

जितेन्द्रिय, साधनपरायण और श्रद्धावान् मनुष्य ज्ञानको प्राप्त होता है तथा ज्ञानको प्राप्त होकर वह बिना विलम्बके—तत्काल ही भगवत्प्राप्तिरूप परम शान्तिको प्राप्त हो जाता है।

स्त्री-पुत्र आपके क्या काम आवेंगे? वही अपना मित्र है जो आपकी परमात्माके विषयमें मदद करे। सब संसार स्वार्थी है—

सुर नर मुनि सब कै यह रीती। स्वारथ लागि करहिं सब प्रीती॥

सब लोग अपने मतलबसे प्रीति करते हैं। स्वार्थ बिना कोई प्रेम करनेवाला नहीं है। स्वार्थरहित प्रेम करनेवाले केवल दो हैं—

हेतु रहित जग जुग उपकारी। तुम्ह तुम्हार सेवक असुरारी॥

बिना प्रयोजन प्रेम करनेवाले तो भगवान् ही हैं और दूसरे उनके सेवक हैं—

सोइ सेवक प्रियतम मम सोई। मम अनुसासन मानै जोई॥

भगवान् कहते हैं वही मेरा सेवक है, वही मेरा प्यारा है, जो मेरी आज्ञाके अनुसार चले। संसारमें साधन करनेवाले सभी मेरे भक्त नहीं हैं, हजारोंमें कोई एक होता है।

मनुष्याणां सहस्रेषु कश्चिद्यतति सिद्धये।
यततामपि सिद्धानां कश्चिन्मां वेत्ति तत्त्वतः॥

(गीता ७। ३)

हजारों मनुष्योंमें कोई एक मेरी प्राप्तिके लिये यत्न करता है और उन यत्न करनेवाले योगियोंमें भी कोई एक मेरे परायण होकर मुझको तत्त्वसे अर्थात् यथार्थरूपसे जानता है।

सब दुनिया स्वार्थकी मित्र है। स्वप्नमें भी कोई परमार्थका मित्र नहीं है। इस प्रकारकी बात उन लोगोंकी नहीं सुननी चाहिये जो कहते हैं कि बूढ़ा होनेके बाद साधन करना चाहिये। जो करना हो सो छोटी उम्रमें ही कर लेना चाहिये।

बुद्धदेवका जन्म हुआ, तब लोगोंने देखकर बताया कि यह या तो महात्मा होगा या चक्रवर्ती राजा बनेगा। राजाने उन्हें चक्रवर्ती बनानेका बड़ा प्रयत्न किया। जब वे बड़े हो गये, तब राजाने उनको युद्ध करनेके लिये भेजा, वहाँ उनकी विजय भी हुई। एक दिन एक वृद्धको देखकर उन्होंने पूछा कि यह वृद्ध क्यों हुआ। मंत्रीसे उत्तर मिला कि समय पाकर बुढ़ापा आता है। क्या मेरेको भी बूढ़ा होना है? आगे जाकर कोढ़ीको देखा, फिर उन्होंने विरक्त होकर ऐसा अभ्यास किया, जिसको देखकर बहुत आदमी उनके अनुसार चलने लग गये। इस प्रकार गौतम बुद्धको मंत्रीके द्वारा कितनी शिक्षा मिल गयी।

कोई-कोई माता ऐसी होती है कि अपने बालकको उपदेश देकर कृतार्थ करती है। माता सुमित्रा लक्ष्मणसे कहती है—

पुत्रवती जुबती जग सोई। रघुपति भगतु जासु सुतु होई॥
नतरु बाँझ भलि बादि बिआनी। राम बिमुख सुत तें हित जानी॥

नहीं तो जैसे कुतिया कुत्तेको जन्म देती है, उसी प्रकार उसने पुत्रको जन्म दिया है। ***'जननी जने तो भक्त जने के दाता के सूर।'*** भक्त—ध्रुव, प्रह्लाद, दाता-उशीनर, शूरवीर-अर्जुन। जो दूसरोंके कल्याणके लिये लड़ते हैं, वे ही शूरवीर हैं। माता सुमित्रा लक्ष्मणसे कहती है कि जब राम वनको जा रहे हैं तब

तुम्हारा अयोध्यामें क्या काम है। ऐसे ही ध्रुवकी माताने ध्रुवको तपस्याके लिये वनमें भेजा है। गोपीचन्दकी माँने गोपीचन्दको भेजा, मदालसाने अपने पुत्रोंको उपदेश दिया। आजकलकी माता अपने बालकोंको ऐसा उपदेश देती है जिससे उनकी आत्मा कमजोर हो जाती है। पहलेकी माताएँ ऐसा उपदेश दिया करती थीं, वह राक्षसोंको भी कुछ नहीं गिनती थीं।

आजकल माताओंमें विशेष मूर्खता छायी हुई है। उनमें बुद्धि नहीं है, विवेक नहीं है। आपलोग जितने भाई बैठे हैं उन लोगोंको परिवारकी स्त्रियोंको शिक्षा देनी चाहिये, जिससे उनका उद्धार हो ऐसी चेष्टा करनी चाहिये। रामायण, गीता आदि ग्रन्थोंकी बातें सुनानी तथा कथा सुननेकी प्रेरणा करनी चाहिये। स्त्री, पुरुष, बालकोंको सभीको बैठाकर रोज साधन कराओ। जो तत्पर होकर साधन करते हैं वे परमात्माकी ओर शीघ्र आगे बढ़ते हैं। अपनी जो आयु बीत गयी वह तो गयी। आप चेष्टा करें तो एक महीनेमें परमात्माकी प्राप्ति हो सकती है। जो सौ वर्षमें उद्धार नहीं हुआ, वह एक महीनेमें उद्धार हो सकता है।

जोरके साथ चलना चाहिये। उत्तम गुण स्वतः ही आकर प्राप्त हो जायँगे। दैवीसम्पदाके लक्षण स्वतः ही आ जायँगे। उन गुणोंको सरल समझना चाहिये। परमात्माकी शरण होनेसे चाहे कितना नीच हो, तत्क्षण महात्मा बन जाता है—

अपि चेत्सुदुराचारो भजते मामनन्यभाक्।
साधुरेव स मन्तव्यः सम्यग्व्यवसितो हि सः॥

(गीता ९। ३०)

यदि कोई अतिशय दुराचारी भी अनन्यभावसे मेरा भक्त होकर मुझको भजता है तो वह साधु ही माननेयोग्य है; क्योंकि वह यथार्थ निश्चयवाला है। अर्थात् उसने भलीभाँति

निश्चय कर लिया है कि परमेश्वरके भजनके समान अन्य कुछ भी नहीं है।

अनन्यभावसे भजन करनेवाले दुराचारीको भी साधु मानना चाहिये। वह सदा रहनेवाली परमशान्तिको प्राप्त हो जाता है, ऐसी महिमा भगवान्‌ने गायी है। फिर कोई भी चिन्ताकी बात नहीं है। भगवान् कहते हैं—कोई कैसा भी मूढ़ होवे, उसका मैं उद्धार कर देता हूँ—

तेषां सततयुक्तानां भजतां प्रीतिपूर्वकम्।
ददामि बुद्धियोगं तं येन मामुपयान्ति ते॥

(गीता १०।१०)

उन निरन्तर मेरे ध्यान आदिमें लगे हुए और प्रेमपूर्वक भजनेवाले भक्तोंको मैं वह तत्त्वज्ञानरूप योग देता हूँ, जिससे वे मुझको ही प्राप्त होते हैं।

भगवान् कहते हैं उनका योगक्षेम मैं निभाता हूँ अर्थात् परमात्माकी प्राप्ति जो उन्हें नहीं हुई है, उसे प्राप्त करा देता हूँ—

अनन्याश्चिन्तयन्तो मां ये जनाः पर्युपासते।
तेषां नित्याभियुक्तानां योगक्षेमं वहाम्यहम्॥

(गीता ९। २२)

जो अनन्यप्रेमी भक्तजन मुझ परमेश्वरको निरन्तर चिन्तन करते हुए निष्कामभावसे भजते हैं, उन नित्य-निरन्तर मेरा चिन्तन करनेवाले पुरुषोंका योगक्षेम मैं स्वयं प्राप्त करा देता हूँ।

तेषामहं समुद्धर्ता मृत्युसंसारसागरात्।
भवामि नचिरात्पार्थ मय्यावेशितचेतसाम्॥

(गीता १२।७)

हे अर्जुन! उन मुझमें चित लगानेवाले प्रेमी भक्तोंका मैं शीघ्र ही मृत्युरूप संसार-समुद्रसे उद्धार करनेवाला होता हूँ।

जिसने मेरेमें चित्त लगा दिया, मेरे शरण आ गया, उसका उद्धार करनेवाला मैं हूँ। हे अर्जुन! कोई चिन्ताकी बात नहीं। मैं कहूँ वैसे कर, मेरी शरण आ जा। मेरे कहनेके अनुसार चल, मैं तेरा उद्धार कर दूँगा। जब ऐसी बात है तब हमें खूब जोरसे साधन करना चाहिये। विशेष चेष्टासे भगवान्‌की प्राप्ति एक मिनट, एक दिन, एक वर्ष, एक जन्ममें हो सकती है। जैसी वह चेष्टा करेगा, उसी अनुसार समय लगेगा।

अपने तो ऐसा रास्ता निकालो जिससे जल्दी-से-जल्दी पहुँच जायँ। उन भगवान्‌के ध्यानको एक क्षण भी नहीं छोड़ना चाहिये। गीतामें यही मार्ग सुगम बताया है—

अनन्यचेताः सततं यो मां स्मरति नित्यशः।
तस्याहं सुलभः पार्थ नित्ययुक्तस्य योगिनः॥

(गीता ८।१४)

हे अर्जुन! जो पुरुष मुझमें अनन्यचित्त होकर सदा ही निरन्तर मुझ पुरुषोत्तमको स्मरण करता है, उस नित्य-निरन्तर मुझमें युक्त हुए योगीके लिये मैं सुलभ हूँ अर्थात् उसे सहज ही प्राप्त हो जाता हूँ।

भगवान् कहते हैं मैं संसारको उत्पन्न करनेवाला हूँ, संसारमें मेरा जन्म दिव्य है, कर्म दिव्य है—

जन्म कर्म च मे दिव्यमेवं यो वेत्ति तत्त्वतः।
त्यक्त्वा देहं पुनर्जन्म नैति मामेति सोऽर्जुन॥

(गीता ४।९)

हे अर्जुन! मेरे जन्म और कर्म दिव्य अर्थात् निर्मल और अलौकिक हैं—इस प्रकार जो मनुष्य तत्त्वसे जान लेता है, वह शरीरको त्यागकर फिर जन्मको प्राप्त नहीं होता, किंतु मुझे ही प्राप्त होता है।

ये यथा मां प्रपद्यन्ते तांस्तथैव भजाम्यहम्।
मम वर्त्मानुवर्तन्ते मनुष्याः पार्थ सर्वशः॥

(गीता ४।११)

हे अर्जुन! जो भक्त मुझे जिस प्रकार भजते हैं, मैं भी उनको उसी प्रकार भजता हूँ; क्योंकि सभी मनुष्य सब प्रकारसे मेरे ही मार्गका अनुसरण करते हैं।

मैं जब उसको भजता हूँ तब क्या उसके पाप रह सकते हैं। जैसे छोटा बालक माँको भजे, बारह महीनेका या दो वर्षका है, किसी तरह माने ही नहीं, माँको ही पुकारे। लड्डू देनेपर भी जब किसी प्रकार भी नहीं माने, तब माँ स्वतः ही आती है।

राम नाम रटते रहो जब लग घटमें प्रान।
कबहुँ तो दीनदयालके भनक पड़ेगी कान॥

ऐसी पुकार लगावे जैसे भूखा बालक माँके लिये पुकार लगाता है।

प्रेम होनेसे प्रह्लादके लिये प्रकट हो गये। प्रेम होनेसे इस वटवृक्षको फाड़कर निकल सकते हैं या यहीं प्रकट हो सकते हैं। शिवजीने कहा है—

हरि ब्यापक सर्बत्र समाना। प्रेम तें प्रगट होहिं मैं जाना॥

भगवान्की दयासे, पुण्योंके समुदायसे ही सन्तोंसे मिलना होता है।

पुन्य पुंज बिनु मिलहिं न संता। सतसंगति संसृति कर अंता॥

संतोंका मिलना जन्म-मरणसे उद्धार करनेवाला है। सत्संगका फल मुक्ति है, मुक्तिसे भी बढ़कर है।

तात स्वर्ग अपबर्ग सुख धरिअ तुला एक अंग।
तूल न ताहि सकल मिलि जो सुख लव सतसंग॥

वह कुल धन्य है, जगत्में पूजनीय है, जिस कुलमें भगवान्के

भक्त प्रकट हुए। अपने कुलका उद्धार करनेके लिये हमें प्रह्लादकी तरह बनना चाहिये। जिन राक्षसोंने प्रह्लादजीका संग किया, प्रह्लादजीने उन सब राक्षसोंका उद्धार कर दिया।

हमलोगोंको खूब जोरसे लगना चाहिये, यदि कोई आपत्ति करे तो उसे मित्र नहीं समझना चाहिये। जो मदद देवे उसको अपना मित्र समझना चाहिये। जो कोई अपना है उन सबको भगवान्‌में लगा दो। धन हो उसे भगवान्‌की भक्तिके प्रचारमें लगा दो। अपना तन, मन, धन सब भगवान्‌में लगा दो। जो भगवान्‌की भक्तिमें मदद देनेवाली है वही स्त्री है, बाकी कुनारी है। वही सम्पत्ति है जो कल्याणके काममें आये, अन्यथा वह विपत्ति है। मरनेके बाद छदाम भी साथ नहीं जायगा, इस शरीरकी हड्डियाँ ठोकर खायेंगी। जबतक शरीरकी मिट्टी नहीं हो जाती, तबतक काम बना लेना चाहिये। सब बातकी सिद्धि एक बातसे हो सकती है—

मन्मना भव मद्भक्तो मद्याजी मां नमस्कुरु।
मामेवैष्यसि सत्यं ते प्रतिजाने प्रियोऽसि मे॥

(गीता १८। ६५)

हे अर्जुन! तू मुझमें मनवाला हो, मेरा भक्त बन, मेरा पूजन करनेवाला हो और मुझको प्रणाम कर। ऐसा करनेसे तू मुझे ही प्राप्त होगा, यह मैं तुझसे सत्य प्रतिज्ञा करता हूँ; क्योंकि तू मेरा अत्यन्त प्रिय है।

ऐसी चेष्टा करनी चाहिये कि रात-दिन परमेश्वरका ध्यान बना रहे। रात-दिन उसके सिवाय किसीका खयाल नहीं आना चाहिये। उनके सिवाय किसीका भी चिन्तन न रहे। एक-एक मिनट लाख रुपया खर्च करनेपर भी नहीं मिलेगा।

रुपयोंसे आदमी नहीं बच सकता। बचनेका उपाय है

भगवान्‌की शरण। शरीर नष्ट होनेके पहले इससे जो कुछ काम लेना हो सो ले लो। खूब जोरसे भजन-ध्यानमें लगना चाहिये।

भाड़ेकी मोटरकी तरह इस शरीरका भाड़ा पहले चुक गया है। शरीर नष्ट होनेके पूर्व मन, वाणी, शरीरसे जो कुछ काम लेना हो सो ले लो, इसमेंसे जितना रतन-माणिक निकालना हो निकाल लो। हीरा, पन्ना, माणिक भगवान्‌का भजन-ध्यान सदाचार है। शरीर, मन, वाणीको खूब जोरसे भजन-ध्यानमें लगाना चाहिये। अन्तकालका क्यों विश्वास रखो। आपका प्राण होशमें जायगा या बेहोशमें, इसलिये उसका आसरा छोड़ दो।

यं यं वापि स्मरन्भावं त्यजत्यन्ते कलेवरम्।
तं तमेवैति कौन्तेय सदा तद्भावभावितः॥
तस्मात्सर्वेषु कालेषु मामनुस्मर युध्य च।
मय्यर्पितमनोबुद्धिर्मामेवैष्यस्यसंशयम्॥

(गीता ८। ६-७)

हे कुन्तीपुत्र अर्जुन! यह मनुष्य अन्तकालमें जिस-जिस भी भावको स्मरण करता हुआ शरीरका त्याग करता है, उस-उसको ही प्राप्त होता है; क्योंकि वह सदा उसी भावसे भावित रहा है। इसलिये हे अर्जुन! तू सब समयमें निरन्तर मेरा स्मरण कर और युद्ध भी कर। इस प्रकार मुझमें अर्पण किये हुए मन-बुद्धिसे युक्त होकर तू निःसन्देह मुझको ही प्राप्त होगा।

भगवान्‌को याद रखते हुए ही सारा काम करना चाहिये। नटनीका ध्यान पैरोंमें है, इसी प्रकार अपना ध्यान परमात्मासे परे हो तो चकनाचूर हो जायँगे।

सर्वत्र ईश्वर-दर्शन*

जैसे अग्नि सब जगह गुप्तरूपसे छायी हुई है, वैसे ही भगवान् सब जगह अप्रकट रूपसे छाये हुए हैं। इस बातका विश्वास होनेसे जैसे दियासलाईमें अग्नि दीखती है, उसी तरह भगवान् दीखने लग जाते हैं। प्रेमकी रगड़से भगवान् साक्षात् विग्रहरूपसे प्रकट हो जाते हैं। दियासलाईमें अग्नि सब प्रकारसे व्याप्त हो रही है। आँखोंसे किसी प्रकार नहीं दीखती है, तब भी रगड़नेसे प्रकट होनेके साथ प्रकाश, दाहशक्ति, सत्ता सब दीखने लग जाते हैं। इसी तरह भगवान् दीखने लग जाते हैं। केवल चेतनमें ही नहीं, जड़में भी प्रत्यक्ष दीखने लग जाते हैं।

सो अनन्य जाकें असि मति न टरइ हनुमंत।
मैं सेवक सचराचर रूप स्वामि भगवंत॥

सचराचर, जड़-चेतन यावन्मात्रमें यह बुद्धि होनेके बाद सब जगह प्रत्यक्ष भगवान् दीखने लग जाते हैं। निश्चयसे हर वक्त दर्शन है। दियासलाईमें आगकी तरह विग्रहरूपसे चाहे जिस वक्त प्रकट हो जाते हैं। सबको नारायण समझकर प्रणाम करता है, यहाँतक कि बर्तावका भी ज्ञान नहीं रहता, प्रेमानन्द हो जाता है। जाति, वर्ण, नीति, कानून, मान, अपमान किसी बातका ज्ञान नहीं रहता, किसीकी भीतरमें ऐसी अवस्था होती है, किसीकी बाहरमें आ जाती है। बाहर ऐसी अवस्था हो तो भी यही बात है, नहीं हो तो भी यही बात है। सब जगह समता हो जाती है। सब जगह परमेश्वर-बुद्धि हो जाती है। हर वक्त मुग्ध रहता है।

यो मां पश्यति सर्वत्र सर्वं च मयि पश्यति।
तस्याहं न प्रणश्यामि स च मे न प्रणश्यति॥

---

* प्रवचन—मिति वैशाख शुक्ल ८, संवत् १९९०, प्रातः ९ बजे, वटवृक्ष, स्वर्गाश्रम।

सर्वभूतस्थितं यो मां भजत्येकत्वमास्थितः।
सर्वथा वर्तमानोऽपि स योगी मयि वर्तते॥

(गीता ६। ३०-३१)

जो पुरुष सम्पूर्ण भूतोंमें सबके आत्मरूप मुझ वासुदेवको ही व्यापक देखता है और सम्पूर्ण भूतोंको मुझ वासुदेवके अन्तर्गत देखता है, उसके लिये मैं अदृश्य नहीं होता और वह मेरे लिये अदृश्य नहीं होता।

जो पुरुष एकीभावमें स्थित होकर सम्पूर्ण भूतोंमें आत्मरूपसे स्थित मुझ सच्चिदानन्दघन वासुदेवको भजता है, वह योगी सब प्रकारसे बरतता हुआ भी मुझमें ही बरतता है।

जैसे प्रह्लादजी सब जगह प्रभुको देखते हैं। जैसे अर्जुनको भगवान्ने विराट्स्वरूपमें सम्पूर्ण संसार दिखाया। जैसे बादलमें जल, हिंगलूमें पारा है, निकालना चाहे तो निकाल भी सकता है। अर्जुनको भगवान्ने चतुर्भुज, विश्वरूप, द्विभुज तीनों रूपोंमें दर्शन दिया। सब जगह परमात्मा प्रत्यक्ष दीखने लग जाता है। मान-अपमानका समान होना तो यहाँकी बात है। उसकी प्रणाली ही ऐसी चली आती है कि यह बात तो स्वभावसिद्ध ही हो जाती है। सांसारिक मनुष्योंकी चालसे उसकी चाल उलटी हो जाती है। वह मान, बड़ाई, प्रतिष्ठा दूसरेको देता है। '**अमानी मानदः मान्यो**' भगवान् मान नहीं चाहते, अपितु मान देते हैं।

स्वामीकी आज्ञाके अनुकूल आचरण करना ही भक्ति है। भगवान्का भक्त दूसरेको मान देकर प्रसन्न होता है। उसे मान, स्तुति अपने लिये विपरीत लगती है। मान-बड़ाईको वह अपनी ओरसे फेंकता है। दूसरे दूसरी ओरसे धकेलते हैं तो बीचमें आकर मिल जाते हैं। निन्दाको यह खींचता है, लोग दूर ढकेलते हैं। परिणाम यही होगा कि आगे जाकर समता प्राप्त हो जायगी।

जड़-चेतन, शीत-उष्ण सबमें समता हो जाती है। अभी हमलोग अनुकूलता चाहते हैं, इसलिये प्रतिकूलता अधिक दीखती है।

प्रथम तो शीत-उष्णका ज्ञान नहीं रहेगा कि इस वक्त क्या अनुकूल है। ज्ञान होगा तो भी बेपरवाही बढ़ जायगी। उसकी आत्मामें तो अनुकूलता-प्रतिकूलता रहेगी ही नहीं। लोक-व्यवहारमें तो शास्त्र अनुकूल-ही-अनुकूल और प्रतिकूल-ही-प्रतिकूल है। भगवान्‌की अनुकूलतामें उसकी अनुकूलता हो जायगी। उनके प्रतिकूल वह जा ही नहीं सकता। भगवान्‌की दृष्टिकी तथा शास्त्रकी दृष्टिकी प्रतिकूलता उसमें बिलकुल रह ही नहीं सकती। भगवान्‌के भावके अनुसार ही उसका भाव है।

समोऽहं सर्वभूतेषु न मे द्वेष्योऽस्ति न प्रियः।
ये भजन्ति तु मां भक्त्या मयि ते तेषु चाप्यहम्॥

(गीता ९। २९)

मैं सब भूतोंमें समभावसे व्यापक हूँ, न कोई मेरा अप्रिय है और न प्रिय है; परन्तु जो भक्त मुझको प्रेमसे भजते हैं, वे मुझमें हैं और मैं भी उनमें प्रत्यक्ष प्रकट हूँ।

व्यवहारमें समानभावसे सबसे प्रेम करता है। सूर्यभगवान् सब जगह व्याप्त हैं। दर्पणमें प्रतिबिम्ब पड़ता है, काठमें नहीं पड़ता, किन्तु सूर्यमें विषमता नहीं है। अग्निमें समता है जो चाहे सो लाभ उठा ले। गंगामें समता है, कोई भी स्नान करे, पाप नष्ट होते हैं। सबमें समता है, विषमता नहीं है। बाहरी लोग अपनी समझसे उसमें विषमताकी कल्पना करें तो उसका कोई मूल्य नहीं है। भगवान्‌की भक्ति करनेसे, शरण होनेसे समता आती है। भीतरसे सब प्रकारसे समान दीखने लग जाता है। अवगुणका एकदम त्याग हो जाता है।

वर्तमानमें जो चीज प्यारी मालूम देती है, विषयभोग अनुकूल

लगता है, भोगनेकी चीजमें सांसारिक सुख मालूम देता है, यह प्रकृतिके सामने जाना है, प्रकृतिरूपी दलदलमें धँस जाना है। इसके विपरीत मार्ग है उसमें भगवान्‌के सम्मुख जाना है। यही भगवान्‌की शरण है। भगवान्‌की शरण लेनेसे ही विषमताका दोष नष्ट हो जाता है। वर्तमानकी वृत्तियोंको उलट देना चाहिये। संसारका चिन्तन संसारमें फँसना है। भगवान्‌में प्रेम करना उद्धार करनेवाला है, साधनकालमें तो वैराग्य ही ठीक है। पीछे भगवान् समझकर ही सबमें प्रेम होगा, वही असली प्रेम है, शुद्ध प्रेम है। संसारी प्रेम तो आसक्ति है। सबमें परमेश्वरका दर्शन करना ही शरण है। इस शरणसे ही समता आती है। सबके हितमें रत रहना ही दया है। लोगोंकी दृष्टिमें दयालु है, अपनी दृष्टिमें दयालु नहीं है, वह तो यह समझता है कि सब भगवान्‌की मूर्ति हैं, मेरे ऊपर उनकी दया है। भगवान् कहते हैं—

उदाराः सर्व एवैते ज्ञानी त्वात्मैव मे मतम्।
आस्थितः स हि युक्तात्मा मामेवानुत्तमां गतिम्॥

(गीता ७। १८)

सभी चारों प्रकारके भक्त उदार हैं, परंतु ज्ञानी तो साक्षात् मेरा स्वरूप ही है, ऐसा मेरा मत है, क्योंकि वह मद्‌गत मन-बुद्धिरूप ज्ञानी भक्त अति उत्तम गतिस्वरूप मुझमें ही अच्छी प्रकार स्थित है।

मेरे लिये समय निकालता है, यह इसकी उदारता है। प्रत्यक्ष सुखसे मन हटाकर मेरेमें मन लगाता है, यह इसकी उदारता है। इसी तरह भगवान्‌का भक्त यही मानता है कि यह सब लोग मुझे पवित्र बनानेके लिये आये हैं। इनके प्रतापसे ही भगवान्‌की चर्चा, लीला, गुणानुवाद, स्मरण होता है, इन सबकी ही दया है। साधन अवस्थामें तो यह बात रहती है, परन्तु सिद्धावस्थामें तो सब भगवान् नारायणरूप ही दीखने लग जाते हैं। सबको वासुदेव ही

देखता है। एक क्षण भी उसकी वृत्ति भगवान्‌से नहीं हटती। एक भक्तिको ही श्रेष्ठ मानता है, भक्ति, ज्ञानके लिये अपना सर्वस्व अर्पण कर देता है। भगवान् कहते हैं कि ज्ञानी मेरी आत्मा ही है। जैसे गोपियाँ पत्ते-पत्तेमें नारायणका रूप देखा करती थीं, ऐसी उच्च स्थिति उस ज्ञानीकी हो जाती है। पहले तो भावना होती है कि सब नारायण-ही-नारायण हैं, बादमें वास्तवमें सब जगह दर्शन होने लगता है। एक बार दर्शनमें कितना आनन्द होता है, जिसे हर वक्त दर्शन होता रहे उसके आनन्दका क्या ठिकाना है। अनन्य शरणसे समता आती है। शरण परायण होना चाहिये। जैसे संसारकी शरण ले रखी है, वैसे ही भगवान्‌की शरण लेनी चाहिये। जो संसारका दास, भक्त है, उसका रुपया ही प्राण है, जीवन है। ५,०००/-की पूँजीमें २,५००/-घट गया तो आधा प्राण चला गया, पूरी पूँजी चली जाय तो जीता हुआ ही मर जाता है। किसी-किसीके तो वास्तवमें ही प्राण चले जाते हैं। रुपयोंके दासकी यह बात है। इस प्रकार नारायण ही जीवन बन जायँ, यह शरणका एक अंग है। रुपयोंका हमलोग ध्यान थोड़े ही करते हैं रुपयोंमें प्रेम है। भगवान्‌में तो सब प्रकारके प्रेमकी आवश्यकता है। जिस तरह मरते दमतक रुपयोंको छोड़ना नहीं चाहते, पकड़कर रखते हैं, उसी तरह भगवान्‌को पकड़ लो। जैसे अजामिलका चित्त वेश्यामें रम गया, उसी प्रकार परमात्माका चिन्तन करे—

कामिहि नारि पिआरि जिमि लोभिहि प्रिय जिमि दाम।
तिमि रघुनाथ निरंतर प्रिय लागहु मोहि राम॥

संसारमें ऐसा रस है ही नहीं, जैसा भगवान्‌में है। भगवान्‌में जो रस है वह अपरिमित है, देश, काल सभी प्रकारसे अपरिमित है एवं नित्य वस्तु है।

पुष्पको सूँघते-सूँघते उससे नफरत हो जायगी। माला लाद दो, सूँघते-सूँघते नफरत हो जायगी। भगवान्‌में सदासे वैसे ही आनन्द आ रहा है ऐसा आनन्द आने लग जाय।

नाथ एक बर मागउँ राम कृपा करि देहु।
जन्म जन्म प्रभु पद कमल कबहुँ घटै जनि नेहु॥

जबतक भगवान्‌के भक्तको भक्त समझते हैं, तबतक प्रेम नहीं हटता। स्वार्थका सम्बन्ध हो तो प्रेम हट जाता है अथवा अवगुण दीख जाय तो प्रेम हट जाता है। भगवान्‌में कोई अवगुण है ही नहीं, मुक्ति देनेकी उनकी सामर्थ्य है, अतएव उनमें प्रेम नहीं घट सकता। सब प्रकारसे भगवान्‌में प्रेम होना चाहिये।

शरणागति ही सुगम साधन है*

शरणका रहस्य बड़ा गहन है, यह साधन सुगम है, इसके समान परमात्माकी प्राप्तिका उपाय न है और न होगा। इसका तात्पर्य समझानेके लिये लौकिक उदाहरण दिये जाते हैं, परन्तु वास्तवमें कोई सटीक नहीं बैठता। इसमें श्रद्धा-प्रेमकी आवश्यकता है। श्रद्धासे प्रेम होता है, स्वाभाविक प्रेम भी होता है। जैसे माता-पिताके आचरण अच्छे न हों तो भी माता-पिताके प्रति बालकोंका स्वाभाविक प्रेम होता है और गुणोंको लेकर भी होता है।

परमात्मामें सब प्रकारसे प्रेम होना चाहिये। वे माता, पिता, सुहृद्, पति सब कुछ हैं। उनसे कौन-सा सम्बन्ध जोड़ना चाहिये? दास्य, वात्सल्य, सख्य, माधुर्य अपनी-अपनी प्रकृतिके अनुकूल ही प्रिय होता है। वास्तवमें तो सब प्रकारका सम्बन्ध भगवान्‌से ही है। अर्जुनसे भगवान् कहते हैं—

स एवायं मया तेऽद्य योगः प्रोक्तः पुरातनः।
भक्तोऽसि मे सखा चेति रहस्यं ह्येतदुत्तमम्॥

(गीता ४। ३)

तू मेरा भक्त और प्रिय सखा है, इसलिये वही यह पुरातन योग आज मैंने तुझको कहा है; क्योंकि यह बड़ा ही उत्तम रहस्य है अर्थात् गुप्त रखनेयोग्य विषय है।

इसमें स्वामी-सेवकभाव तथा सखाभाव दोनों ही हैं। भगवान् अर्जुनसे कहते हैं—

तमेव शरणं गच्छ सर्वभावेन भारत।
तत्प्रसादात्परां शान्तिं स्थानं प्राप्स्यसि शाश्वतम्॥

(गीता १८। ६२)

---

* प्रवचन—मिति वैशाख शुक्ल ९, बृहस्पतिवार, संवत् १९९०, वटवृक्ष, स्वर्गाश्रम।

हे भारत! तू सब प्रकारसे उस परमेश्वरकी ही शरणमें जा। उस परमात्माकी कृपासे ही तू परम शान्तिको तथा सनातन परम धामको प्राप्त होगा।

त्वमेव माता च पिता त्वमेव त्वमेव बन्धुश्च सखा त्वमेव।
त्वमेव विद्या द्रविणं त्वमेव त्वमेव सर्वं मम देवदेव॥

भगवान्‌से कहना चाहिये कि सब कुछ आप ही हैं—किसी तरफ भी वृत्ति जानेकी गुंजाइश नहीं है। प्रेमका उदाहरण लोभीका रुपयेके प्रति दिया जाता है, परन्तु यह असीम प्रेम नहीं है। किसी एक अंशका प्रेम है, पूर्ण नहीं है। परमात्मामें तो असीम प्रेम होना चाहिये। प्रभुसे बढ़कर संसारमें और क्या है? अनन्त ब्रह्माण्डोंका ऐश्वर्य उसके अंशमें है। कोटि-कोटि ब्रह्माण्ड उसके अंशके तेजसे ऐश्वर्यवान् हो रहे हैं। सुन्दरता—परमात्माके समान कोई सुन्दर नहीं है। गुण—परमात्माके समान गुणी कोई है ही नहीं। लोभीका मन धनमें रहता है उससे बहुत अधिक मन उस परमात्मामें रहना चाहिये। ईश्वरप्राप्ति तो उसकी दयासे इतने प्रेममें ही हो सकती है। ईश्वरको छोड़कर दूसरी तरफ मन लगानेकी आवश्यकता ही क्या है?

यो मामेवमसम्मूढो जानाति पुरुषोत्तमम्।
स सर्वविद्भजति मां सर्वभावेन भारत॥

(गीता १५। १९)

हे भारत! जो ज्ञानी पुरुष मुझको इस प्रकार तत्त्वसे पुरुषोत्तम जानता है, वह सर्वज्ञ पुरुष सब प्रकारसे निरन्तर मुझ वासुदेव परमेश्वरको ही भजता है।

उसको कभी भूलना ही नहीं चाहिये। असत् वस्तुमें जैसा प्रेम है वैसा सत् वस्तुमें रहना चाहिये। उदाहरण गणिकाका मिलता है, वह भगवान्‌के प्रेममें लग गयी और उनको प्राप्त हो गयी।

भगवान्‌में इससे भी अधिक प्रेम करना चाहिये। भगवत्-प्रेममें रस भरा पड़ा है, उसका आस्वादन आनेपर प्राणोंकी परवाह नहीं होती, वह छूट ही नहीं सकता। पुरुषोंमें प्रह्लाद, स्त्रियोंमें गोपियाँ तथा मुनि-पत्नियोंका उदाहरण दिया जा सकता है। प्रह्लाद पिताको स्पष्ट कहता है कि मैं किसी प्रकार मेरा प्रेम नहीं छोड़ सकता, यह मेरे वशकी बात नहीं है। संसारका कोई उदाहरण उस भगवत्-प्रेमके समान नहीं है। उदाहरण भगवत्-प्रेमियोंका ही दिया जा सकता है। भगवान्‌का विस्मरण होनेसे उनके प्राण उसी प्रकार नहीं रहते, जैसे जलसे मछलीका वियोग होनेपर उसके प्राण नहीं रहते। मछली तो जलसे बाहर निकालनेपर भी कुछ समय जी सकती है, परन्तु वह सच्चा प्रेमी भगवत्-चिन्तनको छोड़नेसे इतना व्याकुल हो जाता है कि वह जीवित नहीं रह सकता। संसारमें ऐसा कोई उदाहरण नहीं है। भगवान्‌के सिवाय अन्य किसीमें प्रेम न होना यही असली शरण है। अवलम्बन-आश्रय-परायणता सभी अंग शरणमें आते हैं।

अवलम्बन—पकड़ लेना, छोड़ना नहीं—समुद्रमें डूबते हुएको जहाजका लंगर मिल गया, वह बच जायगा। उससे लंगर छूटता ही नहीं। मनसे भगवान्‌का स्वरूप, वाणीसे नामको पकड़ना—यह अवलम्बन है। सबको छोड़कर एक भगवान्‌को पकड़ना है। प्रेमरस्सीसे भगवान्‌के चरणोंको बाँधना है। बाँधकर रखोगे तो कहीं नहीं जायगा। सूरदासजीने हृदयमें बाँध रखा था। उन्होंने भगवान्‌से कहा—

बाँह छुड़ाए जात हौ, निबल जानिकै मोहि।
हिरदै ते जब जाहुगे, मरद बदौंगो तोहि॥

उदाहरण—पक्षीको पालनेवाले उसके पैरोंमें एक तागा बाँधकर छोड़ देते हैं, तागा खींचते ही वह चला आता है। ऐसे

ही हृदय खूँटेमें प्रेमरस्सीसे भगवान्‌को बाँध देना चाहिये। खेतमें किसान बकरीको सौ हाथकी रस्सी बाँधकर छोड़ देते हैं, ऐसे ही हृदयरूपी खेतमें भगवान्‌को प्रेमरस्सीसे बाँधकर रखना चाहिये। स्वार्थी अपना प्रयोजन ही देखते हैं, उस क्रियामें दोष नहीं देखते। भगवान्‌को इस तरह बाँधनेमें कष्ट होता हो तो उसको भगवान् जानें, हमें इसके बारेमें क्या सोचना है।

बंगालमें एक कथा सुनी जाती है—एक भगवान्‌का भक्त था, उसको एक बार नारद मिल गये। वह बोला नारदको जहाँ देखूँगा वहीं मारूँगा, क्योंकि वह रात-दिन भगवान्‌को सोने ही नहीं देता, हर समय याद रखता है। नारदने पूछा तुम कैसे याद करते हो? वह तो सोते-उठते केवल दो समय भगवान्‌को याद रखता था। नारदने भगवान्‌से कहा कि अमुक व्यक्ति तो उलटा आपके भक्तको मारनेके लिये धनुष-बाण लिये फिरता है। मैं अपना नाम बता देता तो मुझको मार देता। भगवान्‌ने कहा कि वह मेरा बड़ा भारी भक्त है। फिर थोड़ी देर बाद भगवान्‌ने अपनी एक लीला दिखलायी। एक लड़का भगवान्‌का भक्त था, बीमार पड़ा। भगवान्‌ने उसके लिये मनुष्यका खून माँगा। नारद सब जगह गये, कोई भक्त देनेको तैयार नहीं हुआ। नारदसे भगवान्‌ने कहा—तुम दे सकते हो? नारदने कहा जैसी आप आज्ञा देंगे। फिर उसी भक्तके पास नारदको भेजा। वह बोला दिनभरमें एक बार भगवान्‌को याद कर लेता है वही भगत है। वह तुरन्त खून देनेको तैयार हो गया। जो भगवान्‌को मानता है वही भगत है। सभी भगवान्‌के भक्त हैं, जितना जरूरत हो ले लो। इससे बढ़कर और क्या है, किन्तु वह लड़का इनकार कर गया। बोला मैं तो किसीका खून काममें नहीं लेता। ऐसा जीना मैं नहीं चाहता। वह भक्त नारदजीसे लड़ने लगा कि मुझको क्यों बुलाकर लाये।

हमारा समय व्यर्थ गया, इसको दण्ड दो, अन्यथा मुझे जिस कामके लिये लाये थे वह काम करना चाहिये।

भगवान् बोले—भाई! भक्तोंसे तो हम ही हार जाते हैं। भगवान् प्रकट हो गये, वह मुग्ध होकर गद्‌गद होकर प्रार्थना करने लगा। वह बोला मुझको तो विश्वास नहीं होता, मेरे तो ऐसे कर्म ही नहीं हैं, इसलिये मुझे विश्वास नहीं होता। भगवान् बोले कैसे विश्वास हो। वह बोला—भगवान्‌की छातीमें भृगुलताका चिह्न है। भगवान्‌ने छाती दिखलायी विश्वास हो गया।

पासमें कौन है? नारद है तो धनुष-बाण लेकर मारनेको तैयार हो गया। भगवान्‌ने समझाया, सबको दर्शन देकर कृतार्थ किया।

संसारमें कोई उस भक्तको नहीं मानता था। वह गुप्त भक्त था। मनमें भजता था। कहता यह था कि मुझमें तो भक्तिके कोई लक्षण हैं ही नहीं। जो भगवान्‌की भक्ति करता है, परन्तु डुंडी नहीं पीटता, वही असली भक्त है। जो यह दावा करता है कि मैं हर वक्त भगवान्‌को भजता हूँ, मैं सर्वश्रेष्ठ हूँ, वही नीचा भक्त है। जो भक्तिको जनाता है वह तो भक्त नहीं, ठग है।

भगवान् बोले—मुझको धक्का खानेकी बड़ी शौक है, वहाँपर मैं धक्का खाकर भी जाऊँगा और जो मुझको बुलाते हैं वहाँ नहीं जाता। नारद बोले—प्रभु! आपकी उलटी गति है।

यह कोई सच्ची घटना नहीं है, लौकिक वार्ता है। भाव लेना चाहिये। वास्तवमें नारद तो पूर्ण भक्त हैं। अभिप्राय यह है कि भीतरसे एक बार पुकारना भी बाहरी रात-दिन पुकारनेसे श्रेष्ठ है।

भजन गुप्त ही विशेष लाभदायक है। भगवान्‌के भक्तकी परीक्षा क्रियासे होती है। बहुत-से भाई केवल माला फेरते हैं, काम पड़नेपर एक पाईका भी त्याग नहीं कर सकते।

भगवान्‌का भजन जिस किसी प्रकारसे करो, लाभ है। वह

तो आग है। पापोंका नाश होगा ही। संसारमें भक्तको गुप्त भक्ति करनी चाहिये। प्रेमसे एक बार पुकारना भी बलवान् है।

भक्तोंके लक्षण नहीं घटते तो वह थोथी भक्ति है। उसको खयाल रखना चाहिये कि कोई-न-कोई त्रुटि है।

भगवान्के नाम उच्चारणमात्रसे सब पाप नष्ट हो जाते हैं। आगकी छोटी-सी चिनगारी जलाकर राख कर देती है, कितना ही बड़ा ढेर हो।

इसी प्रकार पापोंको भस्म करनेकी शक्ति एक नाममें है। प्रेमसे, गुप्तरूपसे, निष्कामभावसे भगवन्नाम लेनेसे सब पापोंका नाश हो जाता है। भगवान्के प्रेममें जिसकी मृत्यु हो सकती है, उसीका प्रेम असली प्रेम है। जो भगवान्को अपने हृदयमें श्रद्धा, प्रेम और विश्वासकी डोरीसे बाँधकर रखता है, वह सबके द्वारा प्रणाम करनेके योग्य है।

जिस प्रकार बन्दर बाजीगरके अधीन है, उसी प्रकार भगवान्के अधीन हो जाता है, वह जैसे नचावें वैसे ही नाचता है। वह भगवान्को भी वैसे ही नचा सकता है। यह उद्देश्य नहीं रखना चाहिये कि भगवान्को नचाना है। कोई हेतु नहीं रखना चाहिये। प्रेम प्रेमके लिये ही करना चाहिये। प्रेम क्यों करना चाहिये? क्योंकि संसारमें भगवत्प्रेमसे बढ़कर कोई चीज नहीं है।

भगवान्से प्रेमके लिये ही प्रेम करना चाहिये, दर्शनोंके लिये भी प्रेम नहीं करना चाहिये। प्रेमके अधीन होकर भगवान् चले आते हैं। यदि तुम्हारेमें प्रेम है तो भगवान्को बुलानेकी आवश्यकता नहीं, यदि वह प्रेमी होगा तो आप ही पीछे-पीछे डोलेगा। ऐसी भक्ति अहैतुकी भक्ति है। बाजीगरका बन्दर तो मूर्ख है, वह उस बाजीगरके उद्देश्यको समझता भी नहीं। फिर भी वह जो कुछ भी चेष्टा करता है, उसकी खुशीके लिये ही

करता है। जो भी कुछ क्रिया करनी चाहिये, ईश्वरकी खुशीके लिये ही करनी चाहिये। भक्तके द्वारा जो आचरण किया जाता है, जो भी कुछ कहता है, ईश्वरकी आज्ञासे ही कहता और करता है।

भगवान् कहते हैं जो कोई मेरा भक्त होता है, उसकी मैं कठपुतली बन जाता हूँ, पर किसकी? जो पहले मेरा बन जाता है। जो कोई अपराध हम करते हैं, उसकी ओर तो वे देखते ही नहीं। हम भगवान्‌के उपकारोंको देखें तो उनको यदि अपने तनकी जूती भी बना कर दें तो भी थोड़ी ही है।

कठपुतलीमें अपनी कोई क्रिया नहीं है। तमाशा दिखानेवाला कभी किसीकी जीत करता है कभी हार, परन्तु कठपुतलीके मनमें कोई भाव नहीं आता। सच्चा भक्त वही है जो हृदय रहते हुए भी उसीकी तरह बन जाता है। भगवान् चाहे जैसे नचावें, उसे कोई विकार नहीं होता।

मृत्युके समय जो नाम जपता या गीतापाठ सुनता हुआ जाता है वह भी मुक्त हो जाता है, परन्तु जीवन्मुक्त तो वही है जो अपने शरीरसे दावा उठा लेता है।

सम्पूर्ण भूत प्राणियोंको भगवान् तो घुमाते ही हैं, परन्तु जो इस प्रकार समझ लेता है वह मुक्त हो जाता है, नहीं तो अपनी इज्जत दे देता है। अर्जुन! तुमको युद्ध तो करना ही पड़ेगा। घूमना तो सबको पड़ेगा ही, परन्तु जो अपनेको अर्पण कर देता है वह बच जाता है।

अपनी ओरसे कुछ भी नहीं करना है, भगवान् जो करावें सो करना है। हृदयमें भगवान् हैं। शास्त्र भगवान्‌की आज्ञा है। महात्मालोग भगवान्‌का स्वरूप हैं, उनकी आज्ञा भगवान्‌की आज्ञा है, यदि भ्रम हो तो महात्मा पुरुषोंसे पूछना चाहिये।

जब दो बातोंमें परस्पर विरोध हो, एकान्तमें बैठकर निष्कपटभावसे

भगवान्से प्रार्थना करनेसे हृदयमें जो आज्ञा मिले वही करे। फिर आपको भगवान् स्पष्ट आज्ञा देंगे। आप कठपुतली बन जायँ।

प्रसाद जो जितना अल्प होता है वही प्रसाद है, अन्यथा भोजन हो जाता है। मालिकके पैसोंको अधिक खर्च करना प्रसाद नहीं विषाद है। जहाँ भोग है वहाँ रोग है, जहाँ रोग है वहाँ शोक है।

भोगबुद्धि नहीं होनी चाहिये। वास्तवमें वही प्रसाद है कि कममें अपना निर्वाह करे। जैसे सच्चा सेवक होकर काम करता है, उसी प्रकार दूकान भगवान्की है सच्चा सेवक बनकर काम करे। पहले झूठ भी बोलता था, अब भगवान् कहेंगे तू मेरे दाग लगाता है। मेरा सेवक होकर झूठ-कपट करता है। जबतक ये दोष हैं तबतक समझ लेना चाहिये कि वह ठग है। भगवान्को अपने फर्मपर अंकित कर ठगना चाहता है, बाहरके साइन बोर्डसे भगवान् प्रसन्न नहीं हैं। भीतरके भावसे भगवान् प्रसन्न होते हैं। अतः गुप्त सेवक बनना चाहिये। जब वह सच्चा भक्त हो जायगा, तब वह नफे-नुकसानमें सुखी-दुःखी नहीं होगा। नुकसानसे सच्चे सेवकको चिन्ता होती है। यदि प्रमाद हो गया हो तो चिन्ता करनी चाहिये, यदि बाजारकी दरके गिर जानेसे हानि हो तो चिन्ता नहीं होनी चाहिये।

वह जिस मालिकका सेवक है, उस मालिकके घाटा नहीं है, यदि होता है तो वह घाटा भी नफा है, क्योंकि वह उसकी इच्छा और नजरमें ही होता है। जैसे डाकघरकी एक शाखासे दूसरी शाखाको रुपया भेजा जाता है, उसमें डाकघरकी मूलतः क्या हानि होती है।

घरमें अतिथि आवे तो सबसे उत्तम वस्तु उन्हें देकर बची-खुची खाना ही अमृत है। बचाकर खाना विष है। इसीका नाम शरण है, यही भक्ति है।

अपने समान जातिवाला, अपनेसे ऊँची जातिवाला, ब्रह्मचारी, वानप्रस्थी अतिथि समझा जाता है। भक्तिमार्गसे अपने घरपर आया हुआ चाण्डाल भी अतिथि समझा जाता है। अपने घरपर कोई भी भिक्षु अतिथिरूपमें आता है परीक्षाकी आवश्यकता नहीं है।

अनेक भिक्षुओंके आनेपर अपनी शक्ति नहीं होवे तो पीनेका जल, आसन, भूमि और मीठे वचन बोले, यही सत्कार है। जिसके पास माल है उसीके लिये जगात (चुंगी) है।

व्यापारमें सत्यताकी आवश्यकता

यतः प्रवृत्तिर्भूतानां येन सर्वमिदं ततम्।
स्वकर्मणा तमभ्यर्च्य सिद्धिं विन्दति मानवः॥

(गीता १८। ४६)

जिस परमेश्वरसे सम्पूर्ण प्राणियोंकी उत्पत्ति हुई है और जिससे यह समस्त जगत् व्याप्त है, उस परमेश्वरकी अपने स्वाभाविक कर्मोंद्वारा पूजा करके मनुष्य परमसिद्धिको प्राप्त हो जाता है।

बर्फमें जलके सदृश परमात्मा सारे संसारमें परिपूर्ण है। किस प्रकार व्यापार करना चाहिये? काम करते समय सब मनुष्योंको भगवान्‌को याद करते हुए तथा उनके अर्पण करते हुए कार्य करना चाहिये। इससे भगवान् बहुत प्रसन्न होते हैं।

प्रश्न—भगवान्‌के लिये व्यापार करने तथा रुपयोंके लिये व्यापार करनेका स्वरूप क्या है?

उत्तर—रुपया-पैसा तो जितना भाग्यमें होगा उतना ही मिलेगा। इसलिये भगवान्‌में श्रद्धा करनी चाहिये। रुपया झूठ-कपटसे पैदा हो नहीं सकता, जितना भाग्यमें होगा उतना ही मिलेगा। कोई कहते हैं कि तब व्यापार करनेकी क्या आवश्यकता है? व्यापार तो एक निमित्तमात्र है। जिस तरह भगवान् अर्जुनको कहते हैं—'**निमित्तमात्रं भव सव्यसाचिन्**' रुपयोंके लिये पाप-कर्म करना मूर्खता है। जितना रुपया रहना है उतना ही रहेगा। कोई मनुष्य लक्ष्मीको बाँधकर नहीं रख सकता। लक्ष्मीको रखनेके लिये मनुष्यके सारे प्रयत्न व्यर्थ हैं, इसलिये व्यापारमें झूठ-कपट नहीं करने चाहिये। व्यापार सत् व्यापार होना चाहिये, तभी यह भगवान्‌के अर्पण हो सकता है, क्योंकि पवित्र चीज ही भगवान्‌के अर्पण की जाती है।

क्रय-विक्रयमें दूसरेकी चीज तो ज्यादा लेनी नहीं चाहिये और अपनी कम नहीं देनी चाहिये। तौलमें, नापमें, गिनतीमें किसीको कम नहीं देना चाहिये। जैसे १०० बोरामें ९९ बोरा भेजना, इस प्रकारका व्यवसाय अन्याययुक्त है। नफा, दलाली, आढत, ब्याज जो तय किया जाय उससे ज्यादा नहीं लेना चाहिये, कमती देना नहीं चाहिये अनुचित तरीकेसे ज्यादा नहीं लेना चाहिये। इस प्रकार अनुचित कस लगानेवालेसे यमराज भी इसी प्रकार कस निकालेगा। आढतमें एक पाई भी अधिक लेना महापाप है। पुराने आदमियोंमें सरलता-सत्यता थी, पर आजकल झूठ, जालसाजी भरी हुई है। नमूना जैसा दिखाया जाय वैसा ही देना चाहिये। गल्लेमें, किरानेमें बहुत बेईमानी होती है। दिखाना एक, देना दूसरा यह बहुत अन्याय है। एक चीजके अंदर दूसरी चीज मिला देनी भी बहुत खराब है।

जो भी कुछ व्यापार किया जाय, उसमें झूठ-कपट नहीं बोलना चाहिये। वचनकी चतुरता तथा वचनमें कपटकी बात भी नहीं बोलनी चाहिये, जैसे युधिष्ठिरने अश्वत्थामाके बारेमें चतुराईसे असत्य कहा था। दूसरेके झूठे उदाहरण देना भी अन्याय है। जिस वक्त साँच बोलनेमें अड़चन लगती हो, वहाँपर साफ कह देना चाहिये कि हम बताते नहीं हैं।

भगवान्‌के लायक तो वही चीज है जिसमें सत्य-व्यवहार हो। सत्य-व्यवहारका मतलब जिसमें झूठ-कपट नहीं है। दूसरेके धनपर मन नहीं चलाना चाहिये। धनके लिये किसी प्रकारका पाप नहीं करना चाहिये। जबतक मनुष्यके द्वारा सत्य-व्यवहार नहीं होता है तबतक मुक्ति असम्भव है। दान करनेका तथा पापकर्म करके कमानेका अलग-अलग फल होता है। फौजदारी और दीवानीमें भी अलग-अलग दण्ड होता है।

इसलिये हमलोगोंको यह निश्चय कर लेना चाहिये कि यदि हम व्यापारमें झूठ-कपट नहीं करेंगे तो हमारा व्यापार उज्ज्वल हो जायगा, लोग हमारा विश्वास करेंगे। माताओंको छिपाव-दुराव नहीं करना चाहिये। जो माताओंको डोरा, यन्त्र या औषध देवे या रुपया लेकर काम करे तो समझ लेना चाहिये कि वह ठग है, यदि वह बेटोंका लोभ देता है और रुपया लेता हो तो उसके बहकावेमें नहीं आना चाहिये। इस प्रकारकी ठगाईमें स्त्रियोंको नहीं आना चाहिये। पेटमें जो कुछ बेटा या बेटी होगा, वह जरूर होवेगा। भैरवजीकी ठेकरी देना इत्यादि सकाम कार्य करना मूर्खता है। एक ही पेटसे बेटे तथा बेटी होते हैं। उनमें स्त्रियाँ भेदभाव रखती हैं, ऐसा नहीं करना चाहिये।

कुमारी कन्याको राँड़ कहना महापाप है। राँड़को भी राँड़ नहीं कहना चाहिये। कोई कहते हैं कि अभ्यास हो गया है सो उस अभ्यासको त्यागना चाहिये। विवाह होनेके बाद बेटे और बेटीमें उलटा व्यवहार हो जाता है। बेटीको तो जो कुछ भी हो सब दिया जाता है और बेटेकी बहूको कुछ भी नहीं। विवाहके बाद बेटा और बहू तो उसे विषसे मालूम देते हैं और बेटी अमृत। इसलिये माताओंसे प्रार्थना है कि बेटीको न देकर बेटे और बहूको देना चाहिये। जो स्त्री अपने घरका धन बेटीको देती है और बेटेके घरमें कुछ भी न रहे तो उसके यशमें कलंक होता है। बेटे माँका उद्धार कर सकते हैं। बेटी कुछ नहीं कर सकती। जबतक स्त्रियोंमें विषमताका दोष है, तबतक मुक्ति नहीं हो सकती। भेद-बुद्धि करना बहुत खराब है। भगवान् देखते हैं कि जो स्त्री बेटे और बेटीमें भेद-बुद्धि रखती है, वह वैकुण्ठके लायक नहीं है। चार चकार हैं—चाकी, चूल्हा, चौका, चरखा। पहलेके जमानेमें स्त्रियाँ चार बजे उठकर चाकी चलातीं, थोड़ी

देरके बाद सूर्योदयके बाद चरखा काततीं, फिर चूल्हा लगाना तथा फिर चौका-बरतन करना यह उनका काम था। पहले चार चकार थे और अब एक चकारमें भी संशय है। इस समय चारों चकारका प्राय: अभाव हो गया है और स्त्रियाँ निकम्मी बैठी झगड़ा किया करती हैं। ऐसी स्त्रियाँ पतिसे भी हर एक बातमें जिद्द किया करती हैं। चाहे आमदनी कम ही क्यों न हो सारे दिन क्लेश रहता है, ऐसी दशामें पतिको गोटा, किनारी, गहने, कपड़ेके लिये दु:खित नहीं करना चाहिये। आजकल आरीका काम चला है जिसका एक पैसा भी नहीं उठता है। आरी जो जाते तथा आते काटती है, उसी प्रकार आरीके कामके कपड़ेकी हालत है। कपड़े पहननेमें भी जो आनन्द है, वह उनका केवल भ्रमित आनन्द है। तारे तथा आरी इत्यादि काँटे-से चुभते हैं, यदि आनन्द है तो पुरुषोंको क्यों नहीं होता। यह केवल कल्पित सुख है। गहनेके बीचमें यदि ऐसा आनन्द है तो भगवत्-चिन्तनसे प्राप्त होनेवाले असीम और अनन्त सुखके लिये चेष्टा करनी चाहिये।

स्त्रियोंको कम खर्च करना चाहिये। किसी-किसी घरमें नौकर ही तेल लगाया करते हैं, यह कैसा अन्याय है। जब उनको काम नहीं होता तो मन्दाग्नि, यक्ष्मा आदि बीमारी हो जाती है। हाथसे पोना पीसना बनाना चाहिये। पीसनेसे पसीने निकलते हैं जिससे शरीर हलका हो जाता है। स्त्रियोंके लिये रसोई बनाना ही अग्निहोत्र होता है। स्त्रियोंकी बनायी हुई रसोई खानेमें जो आनन्द आता है वह रसोइयोंके बनाये हुए भोजनमें नहीं आता। यदि लाखों रुपया होते हुए भी वह शुद्ध भोजन न कर पावे तो उससे गरीब अच्छा है। द्रौपदी रानी होनेपर भी हाथसे भोजन बनाया करती थी तथा वनमें भी हाथसे बनाया करती थी,

इसीलिये भगवान् बुलानेके साथ आते थे। आजकल तो पुत्र भी अपनी बात नहीं मानता, इसलिये माताओंको देहको कष्ट देकर भोजन बनाना चाहिये। यदि स्त्री बैठे-बैठे भोजन करती है तो हरामका खाती है। मनुष्यको जबतक शरीरमें दम है तबतक परिश्रम करके धन पैदा करना चाहिये।

स्त्रियोंके लिये पति ही भगवान् है, यदि वे पतिकी सेवा करती हैं तो भगवान् भी ऐसी आदर्श स्त्रियोंको वैकुण्ठ धाममें लानेकी इच्छा करते हैं। घरमें काम करनेसे जगमें कीर्ति होती है। शरीरमें बीमारी नहीं होती, भगवान् प्रसन्न होते हैं। इसीलिये स्त्रियोंको सेवा करनी चाहिये।

व्यापारको सच्चा बनाना चाहिये। झूठ-कपटको छोड़कर व्यापार करनेमें जगमें कीर्ति होगी, लोगोंमें विश्वास होगा, ईश्वर प्रसन्न होंगे। यदि मेरी बातपर, ईश्वरपर, शास्त्रोंपर तथा प्रारब्धपर विश्वास है तो सत्य व्यवसाय करना चाहिये। हम मनुष्य हैं, हमारे हाथ-पैर हैं, हम मुटिया मजूरी करके, झाँका ढोके भी पैसा कमा सकते हैं। कुत्ते भी विश्वम्भर भगवान्के भरोसे बिना संग्रहके बेफिकर घूमा करते हैं। फिर हम तो मनुष्य हैं, हमारे पास कुछ संग्रह भी है। जिस परमात्माने हमारे पैदा होनेके पूर्व माताके स्तनोंमें दूध दिया था, वह परमात्मा आज कहीं नहीं गया है। यदि परमात्मापर विश्वास न हो, शास्त्रपर तथा प्रारब्धपर भी विश्वास न हो, तो भी क्या बेईमानी करके हम कमा सकते हैं। जब प्रारब्धके अनुसार ही धन मिलता है तो फिर पाप-कर्म क्यों करना चाहिये। भीख माँगकर खाना अच्छा है, यद्यपि यह वैश्योंका कर्म नहीं है, पर आपत्तिकालमें भीख माँगना भी दोष नहीं है, नौकरी करना भी दोष नहीं है, पर झूठ-कपट करना अच्छा नहीं है। युधिष्ठिरने वनमें भिक्षा

माँगी थी। अच्छे काममें विघ्न आया करते हैं। आपत्तिमें परीक्षा होती है, यदि हम आपत्तियोंको पार कर जायँगे तो मुक्ति धरी हुई है। कुन्तीने भगवान्से वर माँगा था कि आप मुझे आपत्ति ही दें—

विपदः सन्तु नः शश्वत्तत्र तत्र जगद्गुरो।
भवतो दर्शनं यत्स्यादपुनर्भवदर्शनम्॥

(श्रीमद्भागवत १। ८। २५)

जगद्गुरो! हमारे जीवनमें सर्वदा पद-पदपर विपत्तियाँ आती रहें; क्योंकि विपत्तियोंमें ही निश्चितरूपसे आपके दर्शन हुआ करते हैं और आपके दर्शन हो जानेपर फिर जन्म-मृत्युके चक्करमें नहीं आना पड़ता।

सुखके माथे सिल पड़ो जो नाम हृदयसे जाय।
बलिहारी वा दुखकी जो पलपल नाम रटाय॥

झूठ मुक्तिमें मदद नहीं दे सकता है। अपने पास जितना धन है, यदि आप भगवान्की पूजा करते हैं, उनकी शरण हैं तो आपका धन नहीं जायगा। वास्तवमें भगवान्में प्रेम होना चाहिये, चाहे धन जावे चाहे जन जावे। किस प्रकारके कर्मसे भगवान्की सेवा करनी चाहिये यह बताया जाता है। मरनेके बाद इस धनपर बिलकुल भी अधिकार नहीं है। न हमारे साथ कोई जायगा, न यमराजके यहाँ हमारी सुनवायी होगी। इसलिये जीते-जी लाभ उठा लेना चाहिये। परमात्माके सर्वस्व अर्पण कर दो, जिस तरह गुमास्ता मालिककी नौकरी करता है, इसी प्रकार भगवान्को मालिक समझकर हमारे धनसे, हमारे कर्मसे उनकी पूजा करनी चाहिये। यदि हमारा मन संसारके पदार्थोंमें है तो हमें फिर जन्म लेना पड़ेगा। जिस प्रकार सच्चा सेवक काम करता है, उस प्रकार सेवा करनी चाहिये। सेवकको वेतन मिलता है, यहाँपर रोटी-

कपड़ा जितना कम ले, उतना ही मालिक प्रसन्न होता है। उसी तरह भगवान् भी प्रसन्न होते हैं। थोड़ा खर्च लेकर ज्यादा काम करनेमें दुनिया ही प्रसन्न होती है तो ईश्वर भी अवश्यमेव प्रसन्न होंगे। हमारी दूकानपर जो ग्राहक आवे, उसे ठगनेकी अपेक्षा उसकी सेवा करनी चाहिये। सेवा करनेसे यह अभिप्राय नहीं है कि उससे दो-चार रुपये कम ले लिया जाय। यदि दूसरे दूकानदार एक आना नफा लेते हैं तो हमें दो पैसा ही उससे लेना चाहिये। जिससे और दूकानदार भी कम लेंगे और इससे सारे संसारको लाभ ही मिलेगा। यदि कहा जाय कि ऐसे तो दूकान फेल हो जायगी तो यह भूल है, जब भगवान्‌की दूकान समझते हैं तो फार्म फेल नहीं हो सकता। नरसी मेहताने एक आदमीको हुण्डी दी। इसी प्रकार भगवान्‌के नामपर सेवा करनेसे दूकानमें कुछ-न-कुछ नफा ही होगा। जो आदमी सर्वस्व भगवान्‌के अर्पण कर देता है उसका फार्म फेल नहीं हो सकता, उसकी झूठी हुण्डी भी सिकर सकती है। मनसे यदि झूठा-मूठा गुलाम हो जाय और दूकानको भगवान्‌की दूकान समझने लग जाय तो समय पड़नेपर सच्चा गुलाम हो सकता है। यदि हमलोग मनमें यह भी कहें कि हे भगवान् यह दूकान तेरी ही है, यह सब कुछ तुम्हारा ही है तो इससे भी भगवान् प्रसन्न होते हैं। चाहे यह हमारी ही क्यों न हो।

आया था कुछ लाभको खोय चला सब मूल।
फिर जाओगे सेठ पा पले पड़ेगी धूल॥

हम भगवान्‌से यह शरीर लेकर भजन करने आये थे और इसे भोग-विलासमें लगाते हैं तो मरनेके बाद चौरासी लाख योनियाँ भोगनी पड़ेंगी। फिर यदि भगवान्‌के पास मनुष्य-शरीर माँगने जावें तो हमें नहीं मिलेगा। यदि हम मनुष्य-शरीरका

सदुपयोग करें तो फिर मनुष्य-शरीर पा सकते हैं या भगवान्में मिल जायँगे।

एक मनुष्य महात्माके पास गया, उसके ऊपर बहुत ऋण हो गया था। प्रार्थना करनेपर महात्माने उसे सौ दिनके लिये पारस पत्थर दे दिया। वह लोहा इकट्ठा करनेमें ही रह गया, दिन पूरे हो गये, वह सोना नहीं बना सका। फिर महात्माके पास गया और दुबारा माँगा तब महात्माने मना कर दिया। इस दृष्टान्तको इस प्रकार समझना चाहिये—महात्मा तो यमराज है और जीव रोज हाजिरी देता है, ऋण सिरपर हो गया अर्थात् पाप बढ़ गया, इसके बाद यमराजने पारस यानी मनुष्य-शरीर दिया। सौ दिन यानी सौ वर्षकी आयु दी, अब उसने यहाँपर आकर लोहा खरीदा अर्थात् पाप इकट्ठा किया और पारस छुआया नहीं अर्थात् सब कार्य ईश्वरके अर्पण नहीं किया। मरनेके बाद यमराजके पास गया। प्रार्थना करनेपर जवाब मिल गया कि अब कुछ नहीं बनना है। अतः जो बात बीती उसे तो छोड़ो और बाकी समयका सदुपयोग करो। सब कार्य ईश्वरके अर्पण कर दो।

एक मनुष्य जो नौकर है और मालिकका सदाव्रत बाँटता है। लोग कहते हैं—वाह सेठ, यदि नौकर कहे कि भाई हम तो नौकर हैं, यह मालिकका सदाव्रत है तो मालिक इसे सुनकर प्रसन्न होंगे। यदि अपना समझे तो हमें मालिक नौकरीसे च्युत कर देगा। हम मनुष्य परमात्माके सेवक हैं, भगवान्का धन समझकर पुण्य करते हैं तो भगवान् प्रसन्न होंगे। जिनका पवित्र निष्कामभाव युक्त मन है वही भगवान्के परमधामको जा सकते हैं। भगवान्ने गीता (६। १७)-में कहा है कि युक्त आहार-विहार करना चाहिये—छः घंटा जीविका, छः घंटा सोना, छः घंटा भजन-ध्यान, साधन-सत्कर्ममें लगाना, छः घंटा शरीरके स्वास्थ्यके

लिये। इस प्रकार समयसे आदमी काम चलावे तो मनुष्यको कोई भी हानि नहीं हो सकती है। जबतक प्राण है तबतक बाकी समयको भजन-ध्यानमें बिताना चाहिये। जप करो, ध्यान करो, गीताका पाठ करो, सन्ध्या करो, सन्ध्याके एक-एक मन्त्रको समझ-समझकर उसके अनुसार चलना चाहिये। गायत्री-जपका इतना महत्त्व है कि यदि श्रद्धा रखकर समझकर जप किया जाय तो सारे जन्मोंके पाप नष्ट हो जायँ। भूत-प्रेत भी गायत्री-मन्त्रसे अभिमन्त्रित जलका छींटा देनेसे भाग सकते हैं। गीताका पाठ भी समझकर करना चाहिये। यदि उसमें जो लिखा हो वह पालन न करे, केवल पाठमात्र करे तो उससे विशेष लाभ नहीं है। जितना समय बाकी है, उसे भगवान्के भजनमें ही व्यतीत करो। पहले मनमें झूठे ही आनन्दकी कल्पना करो, आगे जाकर फिर वह आनन्द सच्चा हो जायगा। जितना हम महत्त्व समझेंगे, उतना ही हमें फल होगा। भगवान्के नामका फल हमारी भावनापर अवलम्बित है। जितना हम उसमें विश्वास करते हैं, उतना ही हमें फल होगा। भगवान्के नामका फल कहनेकी हममें सामर्थ्य नहीं है। शेष-शारदा भी सारे दिन कहते-कहते उसकी महिमा नहीं कह पाते। एक गुरुने अपने चेलेको एक नग देकर कीमत लगवानेके लिये भेजा। सबने अपनी-अपनी बुद्धिके अनुसार कीमत आँकी। उसी प्रकार भगवान्के नामकी कीमत मनुष्य अपनी-अपनी बुद्धिके अनुसार करते हैं, पर भगवान्का भजन अमोलक चीज है। ऐसे भगवान्को हमेशा याद रखना चाहिये। उनके हुक्मको मानकर व्यापार करना चाहिये, दूकानको भगवान्की माननी चाहिये और दूकानपर सब मनुष्योंकी सेवा करनी, निष्कपटताका व्यवहार करना चाहिये तथा भगवान्को याद रखना चाहिये। व्यापारके समय मन भगवान्की तरफ रखना

चाहिये और बाहरी वृत्तियोंसे व्यापार करना चाहिये। नटनी जिस प्रकार रस्सीपर चलती है, गाना, बजाना सब करते हुए भी मन पैरकी तरफ रहता है, इसी प्रकार मन भगवान्‌की तरफ रखते हुए संसारका कार्य करना चाहिये। भगवान्‌के भजनका अभ्यास और उनके चरणोंमें ध्यान रहे। चित्तकी वृत्ति दो प्रकारकी होती है—मुख्य वृत्ति और गौणी वृत्ति। मुख्य वृत्तिसे भगवान्‌का भजन करना चाहिये। गौणी वृत्तिसे संसारका काम करना चाहिये। जिस प्रकार गायें चरती हैं, चरते-फिरते बछड़ेका ध्यान रखती हैं, उसी प्रकार चलते-फिरते, कार्य करते हुए भगवान्‌के चरणोंमें ध्यान रखना चाहिये।

निष्कामभावसे ईश्वरकी शरण होकर, धर्म समझकर गृहस्थाश्रमका पालन करना चाहिये। स्त्रियोंको निष्कामभावसे अपना धर्म समझकर गृहस्थाश्रममें रहना चाहिये। इससे भगवान् भी इन स्त्रियोंको वैकुण्ठमें बुलानेकी इच्छा करते हैं, क्योंकि भगवान्‌के यहाँ अतिथि आते हैं तो उनकी सेवाके लिये भी तो स्त्रियोंकी जरूरत है। यदि भगवान्‌के पास सर्वदा वास करना है तो भगवान्‌को याद रखते हुए, उनका कार्य समझते हुए करना चाहिये। संसारमें जितना धन है हम चाहते हैं कि हमारे पास आ जाय। यह धन तो झूठा है। भगवान्‌की भक्तिरूपी धनको, उनकी पूजाको, सेवाको इकट्ठा करनेकी इच्छा करनी चाहिये। भगवान् उसके घरपर स्वयं आ जाते हैं। दक्षिणमें पुण्डरीक नामका माता-पिताका भक्त था, उनकी सेवा किया करता था, भगवान् उसके घरपर आये। बोले—मैं भगवान् हूँ, उसने एक ईंट बैठनेके लिये सरका दी। भगवान् बोले—मेरी तरफ देख तो ले, नहीं तो मैं चला जाऊँगा। उसने पूछा, आप क्यों आये हैं। भगवान्‌ने कहा कि तुम्हारी मातृ-पितृ भक्तिसे प्रसन्न होकर मैं

आया हूँ। पुण्डरीकने कहा कि जब आप इस भक्तिसे आये हैं तो मैं इस भक्तिको क्यों छोड़ूँ? जब आप अभी आये हैं तो गरज होगी तो आगे भी आ जायँगे। भगवान् हारे और उसके सामने आ गये। इस प्रकार जो मनुष्य सेवा लूट रहा है, सत्संग कर रहा है, वह भगवान्‌को ही लूट रहा है। सदाचार, पूजा इत्यादि रत्न समझकर इन्हें लूटना चाहिये।

कबिरा सब जग निर्धना धनवन्ता नहिं कोय।
धनवन्ता सोइ जानिये जाके राम नाम धन होय॥

संगका प्रभाव

उन परमात्माकी ऐसी सामर्थ्य है कि वह जो चाहे सो कर सकते हैं। दुःखोंकी निवृत्ति तो उनके दर्शनोंसे ही हो जायगी। एक राजासे प्रेम होनेपर कैसा आनन्द होता है। त्रिलोकीके राजासे प्रेम होनेपर और भी आनन्द होता है, फिर वह परमात्मा तो अनेक ब्रह्माण्डोंके स्वामी हैं।

ईश्वरके अनुकूल बन जाना ही प्रेम होनेका असली उपाय है। उनकी आज्ञाका पालन करना ही उनके अनुकूल बनना है। गीता भगवान्‌का कानून है। श्रुति-स्मृति भगवान्‌का कानून है। इन सबका सार गीता है।

ईश्वर जिस प्रकार चाहते हैं, हमको वैसा ही बनना चाहिये। ईश्वर सम्पूर्ण गुणोंसे सम्पन्न हैं। संसारमें समस्त गुण जो भासते हैं, वे ईश्वरके गुणोंका ही अंश हैं। ईश्वर क्या चाहते हैं? सद्‌गुण-सदाचारका पालन। उत्तम आचरणका नाम सदाचार है। सद्भाव उत्तम भावको कहते हैं। सत्य, सेवा, प्रिय भाषण, सद्‌गुण सदाचारका पालन करना चाहिये। दुर्गुण-दुराचारका त्याग करना चाहिये। काम, क्रोध, लोभ, ईर्ष्या इन दुर्गुणोंका त्याग करना चाहिये। सद्‌गुणोंका पालन, बुरी बातोंका त्याग, उत्तमका पालन कैसे हो? ईश्वरके चिन्तनसे। ईश्वरका स्मरण तो बहुत लोग करते हैं? नहीं, वे तो मान-प्रतिष्ठाके लिये करते हैं। ईश्वरके लिये नहीं करते। इसी प्रकार ध्यान, मालापर जप करते हैं। जप क्या है? ईश्वरका स्मरण।

माला तो करमें फिरे जीभ फिरे मुख माहिं।
मनुवा तो चहुँ दिसि फिरे यह तो सुमिरन नाहिं॥

ईश्वरका नाम-स्मरण करते हो उस समय ईश्वरका स्मरण ही

होना चाहिये, नहीं तो धोखा देना है। लोगोंको ठगनेके लिये तुमने धोखा दिया है। एक माला मनसे फेरी हुई बेमनकी एक हजार मालासे भी अधिक है। ईश्वरका ध्यान नहीं करते, ध्यान करते हो दुनियाका, दुनियाका ध्यान करके वही फल होना चाहिये।

रामचन्द्रजीका ध्यान करते हैं तो उन्होंने क्या-क्या किया, इसका ध्यान-स्मरण होना चाहिये। गुणोंकी तरफ खयाल करके ध्यान करते हैं उसीसे लाभ होता है। महात्माके पास गये तो उनकी और चीज न देखकर उनमें गुण हों वे देखने चाहिये। गुणोंके देखनेसे उनके गुण आते हैं। ईश्वरका ध्यान करनेसे उनके गुण आते हैं। यदि नहीं आवें तो हम ढोंग करते हैं। जिनकी आत्मा पवित्र नहीं होती, उन्होंने संग नहीं किया। मनसे, शरीरसे महात्माका संग करनेसे उनके गुण आते हैं, फिर ईश्वरका संग करनेसे क्यों नहीं आवेंगे। ईश्वरका ध्यान-जप करनेसे हमको जरूर लाभ होगा। नामीका नाम स्मरण होनेसे उसके गुण आवेंगे ही। उसका जप करना, ध्यान करना, प्रार्थना करनी चाहिये। ईश्वर इस बातको जान जाता है कि यह तेरे गुण जानता है, गुण जाननेसे वह प्रसन्न होता है। वह जब जान जाते हैं कि यह तुम्हें चाहता है, तब वह उनसे प्रेम करने लग जाते हैं, क्योंकि ईश्वरका यह कानून है कि जो मुझे चाहता है उसे मैं चाहता हूँ। भगवान्‌से मिलनेका उपाय प्रेम और प्रेमका उपाय भक्ति है। भगवान् साक्षात् दर्शन तो प्रेमसे ही देनेके लिये बाध्य हैं—

भक्त्या त्वनन्यया शक्य अहमेवंविधोऽर्जुन।
ज्ञातुं द्रष्टुं च तत्त्वेन प्रवेष्टुं च परंतप॥

(गीता ११। ५४)

हे परंतप अर्जुन! अनन्य भक्तिके द्वारा इस प्रकार चतुर्भुज रूपवाला मैं प्रत्यक्ष देखनेके लिये, तत्त्वसे जाननेके लिये तथा प्रवेश करनेके लिये अर्थात् एकीभावसे प्राप्त होनेके लिये भी शक्य हूँ।

इस श्लोकमें चार बातें आयी हैं—भगवान्‌के दर्शन होना, प्राप्त होना, उनको तत्त्वसे जाना और उनमें प्रविष्ट होना।

भगवान् कहते हैं कि मुझे भक्तिसे कोई भोजन कराता है तो प्रकट होकर भी खा सकता हूँ। हम भोग लगाते हैं, वह एक प्रकारसे स्वीकार तो करते हैं, परन्तु साक्षात् प्रकट होकर खाते तो नहीं, वह हमारी कमी ही समझनी चाहिये।

ईश्वरमें जिन पुरुषोंका विश्वास है, उनके दर्शन, चिन्तन, जीवनी पढ़नेसे ईश्वरमें विश्वास हो सकता है। कुसंग करनेसे बुरी बात भी आ सकती है तो अच्छी क्यों नहीं आवेगी।

प्रश्न—बुरे संगका जितना प्रभाव पड़ता है, उतना अच्छेका क्यों नहीं पड़ता?

उत्तर—आरम्भमें सुखरूप समझकर मूर्ख उसमें फँस जाता है, दूरदर्शी नहीं। परिणाम नहीं देखना यह मनुष्यता नहीं है, पशुता है। जैसे पतंग रोशनीमें सुख देखकर जाता है, परिणाममें मर जाता है। मनुष्य होकर जो परिणाम नहीं सोचता, वह मूर्ख है।

प्रश्न—सत्संगका प्रभाव अमित है या कुसंगका?

उत्तर—कुसंग करते कितना समय हुआ और सत्संग करते कितना समय हुआ। समान ही फल होता तो लाखों वर्ष सत्संग करना पड़ता। मनसे सत्संग करना ही सत्संग करना है। ध्यान करते हैं पूछा मन कहाँ गया, पुराने कुसंगमें। एक क्षणके सत्संगसे लाखों वर्षोंके कुसंगका प्रभाव नष्ट होता है।

प्रश्न—स्मृति तो इसी जन्मकी रहती है।

उत्तर—एक माताके कई पुत्र होते हैं, परन्तु स्वभाव अलग-अलग होते हैं। स्मृति तो इसी जन्मकी रहती है, परन्तु स्वभाव पूर्वजन्मोंके हैं। ध्यान करने बैठते हैं, मन जगह-जगह चक्कर लगाता है, यह अनेक जन्मोंके अभ्यासके कारण है। यह

शनैः-शनैः रुकेगा। गाड़ी जोरसे आ रही है तो वह झट नहीं रुकती, झट रोकनेसे गाड़ी उलट भी सकती है।

प्रश्न—एक साधु जिसने बहुत सत्संग की वह थोड़े कुसंगसे गिर जाता है।

उत्तर—पीछे कुसंग भी तो बहुत किया हुआ है। लाखों वर्षोंके कुसंगके लिये उतने ही सत्संगकी जरूरत नहीं है। महाभारत, अश्वमेधपर्वके १९वें अध्यायकी उत्तर गीतामें ऐसा लिखा है कि लगातार छः मासके साधनसे ही उद्धार हो सकता है।

भगवान्‌की दया तो असीम और अपार है, शेष, गणेश भी नहीं समझे तो मैं तो क्या जानूँ। मैं जितनी जानता हूँ उतनी वाणीसे नहीं कह सकता, वाणीसे कहूँ, उतनी आपके कानमें नहीं जाती, कानमें जावे उतनी आप समझ नहीं सकते, जितनी समझे उतनी मन नहीं पकड़ता, जितनी मन पकड़े उतनी काममें नहीं आती।

दया दो ही कारणोंसे समझमें आती है—श्रद्धा और अन्तःकरणकी पवित्रतासे। स्वार्थको त्यागकर कर्म करनेसे एवं ईश्वर-भक्ति करनेसे ही अन्तःकरण पवित्र होता है। मैला कपड़ा साबुनसे साफ हो जाता है। हृदय मैला कपड़ा है, पाप मैलापन है, जप साबुन है, निष्कामभाव और प्रेम ही जल है। स्वार्थ जल नहीं है। मैलेसे मैला नहीं धुलता।

प्रश्न—कोरे साबुनसे काम नहीं चलता?

उत्तर—समयपर जल मिलनेसे कुछ काम होता ही है। साबुनका तन्तु तो रहता ही है, कभी जल मिल जाय तो काम हो जाय। अतः जप करना ही उत्तम है।

पुस्तकें जमीनपर कभी नहीं रखनी चाहिये। धार्मिक पुस्तकोंपर विशेष ध्यान देकर आदरपूर्वक रखनी चाहिये।

वैराग्य होनेमें स्थानका प्रभाव*

यह स्थान वैराग्ययुक्त है। वृन्दावनकी भूमि तो प्रेममय है। यहाँ चित्तकी वृत्तियाँ स्वाभाविक ही वैराग्यकी ओर झुकी जा रही हैं। भागीरथीके दर्शनमें ही वैराग्य है। गंगाकी ध्वनि ध्यानमें बड़ी सहायक है। चारों तरफ वन है। गंगाजीकी रेणुका, वटका वृक्ष, भागीरथीका बहना और शब्द, वन, पहाड़, गुफा सब चीजें वैराग्ययुक्त हैं और फिर वैराग्यकी चर्चा चलती है, फिर भी यदि वैराग्य न हो तो क्या कहा जाय? यहाँ तो स्वतः ही वैराग्य हो रहा है। किसी-किसी समय तो व्याख्यान देना ही भारी हो जाता है। एक तो वैराग्य वह है जिसमें सांसारिक भोगोंको दुःखमय समझकर उनमें उपरामता होवे। दूसरा वैराग्य वह है जिसमें ऐसी तपोभूमिमें आकर वैराग्यकी भावना होती है, शौकीनी इत्यादि सब भूलकर त्रिलोकीके सुखको भी भूल जाता है। दुःख समझकर जो वैराग्य होता है वह कीमती नहीं है। उस वैराग्यके होनेसे जो त्याग होता है, वह राजसी त्याग है। विषयभोग देखनेमें सुखकारक पर परिणाममें दुःखकारक हैं। भोग-विलास तो पशुयोनियोंमें भी हैं। इस प्रकार समझकर जो त्याग होता है, वह सात्त्विक त्याग है। परमात्माकी प्राप्ति तो बहुत दूरकी बात है। वैराग्यकी तरंगोंमें संसार 'स्वाहा' हो जाता है। देहाभिमानके नाशसे पर-वैराग्य हो जाता है। वह वैराग्य वैराग्यवान् पुरुषोंके दर्शनसे ऐसी भूमिमें वास करनेसे होता है।

वैराग्य उसे कहते हैं, जब संसारके सम्पूर्ण भोग-विषयोंका नाम भी अच्छा नहीं लगे। उदाहरण—जिस प्रकार हमारी जातिमें मांसके लिये उपरामता है, वैसी ही उपरामता सारे विषयोंमें होनी

---

* यह प्रवचन वटवृक्षके नीचे गीताभवन, स्वर्गाश्रममें दिया गया था।

चाहिये। उपरामता होनेके बाद जो आनन्द होता है वह असीम है। जब हृदयमें वैराग्य हो जायगा तो मन विषयोंकी तरफ चलायमान नहीं हो सकता। वैराग्य ऐसा होना चाहिये जैसे जडभरत, शुकदेव, जनक, सनकादिक, गौतम बुद्ध, हरिदासको हुआ था। पहले वैराग्य, पीछे उपरामता, फिर ध्यान होगा। देहाभिमान विवेकसे हटता है। मैं-मेरा इत्यादि भाव सब लुप्त हो जाते हैं। विवेकसे वैराग्य होता है, वैराग्यसे उपरामता होती है, उपरामतासे ध्यानकी गाढ़ता होती है। चित्तमें जब वैराग्य होता है, उस समय एकान्तकी इच्छा होती है, विषयभोग विषकी तरह लगने लग जाते हैं। शौकीनी और विलासिताका उपभोग नहीं कर सकता। अपनी स्त्रीके साथ भी भोग-विलास मुश्किल हो जाता है। बहुत आराम आदिकी शय्यापर सो नहीं सकता, पुष्पोंकी माला अपमानजनक मालूम देती है। पुष्पोंकी माला जूतोंकी मालाकी तरह लगती है। भोगी आदमीकी अपेक्षा विपरीत बुद्धि हो जाती है। सत्कार उसको तिरस्कार मालूम देने लग जाता है। वास्तवमें वैराग्ययुक्त अवस्थामें उसकी वृत्तियाँ संसारकी तरफ न जाकर एकान्तमें रहकर भजन-ध्यान करना चाहता है। जो आदमी उन्नति चाहे, वह आराम और बड़ाईको शत्रु समझे। इसलिये आरामसे बचना चाहिये। थोड़ा-सा वैराग्य ढीला होनेसे आराम कण्ठ पकड़ लेता है। ध्यानके पूर्व इन्द्रियोंको विषयोंसे हटाकर ध्यानमें लगा रहे। वैराग्यके द्वारा स्फुरणारहित हो जाय। दृढ़ वैराग्य ही शस्त्र है, उसके द्वारा संसारका छेदन करे अर्थात् स्फुरणारहित हो जाय। अहंता-ममतारूपी मूलोंके सहित इस वृक्षको काट डाले। फिर परमात्माकी शरण होवे। शरणका मतलब है संसारका अत्यन्त अभाव करके एक विज्ञानानन्दघनके सिवाय और कोई नहीं रहे, ऐसी स्थिति हो जाय।

मनसे परमात्माका चिन्तन करना चाहिये। जिसने मनको जीत लिया, वह परमात्माकी प्राप्ति कर सकता है। उस परमात्माका भजन, ध्यान निष्कामभावसे करना चाहिये, ईश्वरकी प्रसन्नताके लिये करना चाहिये।

जप, ध्यान, सन्ध्या, पाठ यदि मन लगाकर किया जाय तो उसका फल अक्षय है, इसलिये सब कुछ मन लगाकर करना चाहिये। गीतामें भगवान्‌ने स्मरण और ध्यानपर जोर दिया है। जप ध्यानमें सहायक होनेके कारण जपकी महिमा कही है। जप जितना सहायक है उतना और कोई सहायक नहीं है। सत्संग भी सहायक है।

परमात्माके ध्यान एवं चिन्तनकी महिमा

परमात्माका जो ध्यान बताया गया था, यदि उस ध्यानपर जोर दिया जाय तो भगवान्‌के मिलनेकी भी आवश्यकता नहीं रहे। भगवान् जरूर मिलेंगे। भगवान्‌से प्रार्थना करनी चाहिये कि यदि दर्शन नहीं देवें तो ऐसी कृपा करें कि आपका ध्यान तो निरन्तर बना रहे। यदि प्रभु कहें कि उसके भी अधिकारी नहीं हो तो क्या ध्यानके विषयमें भी अधिकारी, अनधिकारीकी बात आती है? खैर आपमें अनन्त प्रेम हो जाय। तीर्थ आनेका, सत्संग करनेका सब फल मैं समझ लूँगा, यदि अनन्य प्रेम हो जाय। यदि प्रेम भी नहीं होवे तो आप क्या चीज हैं यह हम जान जायँ तो भी ठीक है। यदि प्रभु कहें कि जाननेकी बुद्धि नहीं है तो आपमें अनन्य श्रद्धा हो जाय, यदि प्रभु कहें कि श्रद्धा बिना प्रभाव जाने नहीं होती तो प्रभाव ही जना दें, यदि कुछ भी नहीं होवे तो आप हमें हमेशा याद रहें। कुछ तो पुरस्कार मिलना चाहिये। आपके वचन हैं—

यो मामेवमसम्मूढो जानाति पुरुषोत्तमम्।
स सर्वविद्भजति मां सर्वभावेन भारत॥

(गीता १५। १९)

हे भारत! जो ज्ञानी पुरुष मुझको इस प्रकार तत्त्वसे पुरुषोत्तम जानता है, वह सर्वज्ञ पुरुष सब प्रकारसे निरन्तर मुझ वासुदेव परमेश्वरको ही भजता है।

अपनी भारी-भारी बातें सब आप रखें, कम-से-कम हम आपको हरदम याद रखें इतना तो करें। यदि परमात्मा नहीं दें तो '**मच्चित्ताः**' स्वयं जबरदस्ती ले ले अर्थात् अपना चित्त भगवान्‌में लगा दे।

बाँह छुड़ाए जात हौ, निबल जानिकै मोहि।
हिरदै ते जब जाहुगे, मरद बदौंगो तोहि॥

और तो सब बात आपके सहारे है, पर कुछ मेरे भी तो सहारे है। अपने तो सूरदासजीकी बात याद रखो। इतनी हिम्मत अपने रखो। यदि हम परमात्माका चिन्तन हमेशा करते रहेंगे तो भी बहुत है। मनको साम, दामसे समझाओ, रे मन! आनन्दरूप परमात्माको छोड़कर विषरूपी विषय-वासनाओंमें क्यों फँस रहा है?

नर तनु पाइ बिषयँ मन देहीं। पलटि सुधा ते सठ बिष लेहीं॥

परमात्माका चिन्तन तो अमृत है और विषयोंका चिन्तन विष है।

ताहि कबहुँ भल कहइ न कोई। गुंजा ग्रहइ परस मनि खोई॥

पारसमणिको खोकर गुंजाको लेना बहुत ही मूर्खता है। परमात्माका ध्यान स्वाभाविक होना चाहिये। हे प्रभु! पाँच-छः बातें आपको बता दीं, आपको हलकी लगे वह दे दें। यदि कुछ नहीं दें तो आप ही आ जायँ। यदि प्रभु कहें कि तू पात्र नहीं है तो पात्र बना लें। आप तो असम्भवको भी सम्भव बना सकते हैं। फिर यह तो असम्भव नहीं है। यदि पास नहीं आवें तो थोड़ी दूर ही खड़े हो जायँ। हमलोग चोर-डाकू तो हैं ही नहीं कि कुछ छीन लेंगे। हमलोग यह भी जिद नहीं करते कि आप दर्शन नहीं देंगे तो हम जायँगे ही नहीं। कुछ तो विचार करना चाहिये। आपकी दयाकी बात है, अब तो आपके ऊपर ही छोड़ रखी है। आपका क्या कर्तव्य है, आप ही विचार करें। आपका जो कर्तव्य है वह आपको पालन करना पड़ेगा, यह भी मैं नहीं कहता। आप तो अपना कर्तव्य-पालन करते आये ही हैं। पर हम अपना कर्तव्य-पालन नहीं कर सकते; क्योंकि हम तो मायाके दास हैं, किन्तु अब आपका दास बनना चाहते हैं, आप

अपना लें तो काम बन जाय। आप यदि कह दें कि तुम मेरे हो तो मुझे दर्शनकी आवश्यकता नहीं है। जिसे भगवान्‌ने अपना लिया उनके तो ठीक ही है। संसारमें जो दुराग्रह करता है, हठ करता है, उसे भगवान् नहीं मनाते। अपने बड़ोंसे हठ नहीं करना चाहिये। जब भरतजीने कहा कि यदि आप अवध नहीं लौटेंगे तो मैं अनशन करूँगा। भगवान्‌ने कहा कि भरत यह समझदारीका कार्य नहीं है। इसलिये तुम्हें इसका प्रायश्चित्त करना चाहिये। इसलिये न कभी रूठना चाहिये, न कभी हठ करना चाहिये यह शिक्षा है। जो भाई हठ करता है उसके घरवाले भी नाराज होते हैं। यदि भगवान्‌को प्रसन्न रखना हो तो कभी भी हठ नहीं करना चाहिये। इस बातको सदा खयालमें रखनी चाहिये। भगवान्‌में विश्वास होना चाहिये। भगवान् यदि चाहें तो फिर बाधा कौन लगायेगा। यदि हम कहें कि भगवान् एक दिनमें नहीं आ सकते तो हमने उनका प्रभाव नहीं जाना। हिरण्यकशिपु और प्रह्लादकी बातमें चाहे कितने ही दिन लगे, पर खम्भ फाड़कर निकलनेमें क्या देर लगी। यहाँपर वटवृक्ष फाड़कर निकल सकते हैं। वह चाहें फिर देर नहीं है। आँखके खोलने-मीचनेमें भी देर लग सकती है, पर परमात्माके प्रकट होनेमें उतनी देरी नहीं लगती। देवताओंका अहंकार मिटानेके लिये यक्षके रूपमें भगवान् आये थे, अपना भी अहंकार क्या कम है। दियासलाईमें आग है उसको प्रकट होनेमें क्या देर लगती है। हमें विश्वास होना चाहिये। जो विश्वास दस वर्षमें नहीं होता वह एक दिनमें हो जाता है। परमात्माकी लीला अपार है। शेष, महेश, गणेश भी पार नहीं पा सकते। हम तो क्या चीज हैं। प्रभु एक मिनटमें प्रकट हो जाते हैं। यह बात असम्भव नहीं है। हम निश्चय कर लें कि आज भगवान् जरूर आयँगे तो जरूर प्रकट हो सकते हैं।

अन्य बातोंमें तो संतोष रखना चाहिये, पर ईश्वरके प्रेममें संतोष नहीं रखना चाहिये। चाहे ईश्वर नाराज हों पर ईश्वर-चिन्तनका हठ तो छोड़ना ही नहीं चाहिये। प्रभु हमारे स्वामी और हम उनके सेवक—यह अभिमान कभी नहीं जाना चाहिये। इसमें कोई कहे कि संतोष कर लो तो संतोष नहीं करना चाहिये—

अस अभिमान जाइ जनि भोरे। मैं सेवक रघुपति पति मोरे॥

दुनियाको रुपयोंके दासत्वको हटाना ही चाहिये। हे प्रभु! तुम्हारेमें अनन्य प्रेम होना चाहिये। धनसे मनुष्य नहीं अघाता यह तो परम धन है।

आजसे लेकर मरणपर्यन्त एक क्षण भी तेरा ध्यान नहीं छूटे। दर्शन तो जो इसका अधिकारी हो उसे दें, पर एक बात चाहिये कि एक क्षण भी आपको नहीं भूलूँ। भगवान् कहते हैं—

अनन्यचेताः सततं यो मां स्मरति नित्यशः।
तस्याहं सुलभः पार्थ नित्ययुक्तस्य योगिनः॥

(गीता ८। १४)

हे अर्जुन! जो पुरुष मुझमें अनन्यचित्त होकर सदा ही निरन्तर मुझ पुरुषोत्तमको स्मरण करता है, उस नित्य-निरन्तर मुझमें युक्त हुए योगीके लिये मैं सुलभ हूँ अर्थात् उसे सहज ही प्राप्त हो जाता हूँ।

नित्य-निरन्तर आपका चिन्तन हो, इसके लिये हमने आपसे सामर्थ्य ही तो माँगा है, यदि भगवान् अपनी यह बात मंजूर कर लेवें तो फिर बेड़ा पार हो जाय। निरन्तर चिन्तनके लिये हठ करना भी कोई पाप नहीं है। हम तो आपका चिन्तन नहीं छोड़ेंगे, यह हठ तामसी नहीं है, यह दुराग्रह नहीं है, सत्याग्रह है। स्वामीको कभी नहीं भूलना चाहिये। प्रभु! और सब बात माननेके

लिये तैयार हूँ, पर आपको छोड़ना नहीं बनेगा। श्रद्धाकी देरी है, दियासलाईकी तीलीमें आग है, रगड़नेसे प्रकट हो जाती है, वैसे ही भगवान्‌के मिलनेकी बात है।

जो श्रद्धा और प्रेमसे भगवान्‌को भजता है उसकी भगवान्‌ने इतनी प्रशंसा की है। वह योगियोंमें भी श्रेष्ठ है। मेरे परायण ही होकर मुझे भजता है। प्रभुकी सेवाके लिये हम हठ भी करें तो दोष नहीं है। हे प्रभु! ऐसा वर दो कि हम तुम्हारा भजन निरन्तर करते रहें, यदि आप आशीर्वाद दें तो हम कृतार्थ हो जायँ।

हमें भगवान्‌के चरणोंमें ध्यान रखना चाहिये, चाहे सब कामोंमें बाधा आ जाय, भगवत्-चरणोंकी तरफ ध्यान निरन्तर रहना चाहिये। भगवान्‌के लिये खान-पान सब भूल जाय।

अपारसंसारसमुद्रमध्ये
सम्मज्जतो मे शरणं किमस्ति।
गुरो कृपालो कृपया वदैत-
द्विश्वेशपादाम्बुजदीर्घनौका ॥

(प्रश्नोत्तरी १)

प्रश्न—हे दयामय गुरुदेव! कृपा करके यह बताइये कि अपार संसाररूपी समुद्रमें मुझ डूबते हुएका आश्रय क्या है?

उत्तर—विश्वपति परमात्माके चरण-कमलरूपी जहाज।

भगवन्नाम ही नौकाकी रस्सी है, नामको बार-बार जपना ही उस रस्सेके ऊपर चढ़ना है। मूर्खतावश नौकासे कूद जायँगे तो फिर रस्सी हाथ लगे न लगे, कूदना क्या है ध्यानको छोड़ना। भगवान् गीतामें कहते हैं—

तस्मात्सर्वेषु कालेषु मामनुस्मर युध्य च।
मय्यर्पितमनोबुद्धिर्मामेवैष्यस्यसंशयम् ॥

(गीता ८। ७)

इसलिये हे अर्जुन! तू सब समयमें निरन्तर मेरा स्मरण कर और युद्ध भी कर। इस प्रकार मुझमें अर्पण किये हुए मन-बुद्धिसे युक्त होकर तू निःसन्देह मुझको ही प्राप्त होगा।

अनन्यभावसे चिन्तन करनेवालेके लिये भगवान्ने कहा है कि मैं उसका मृत्युरूपी संसार-सागरसे उद्धार करनेवाला हूँ, योगक्षेमको वहन करनेवाला हूँ, बुद्धियोगको देनेवाला हूँ।

हम आपसे योगक्षेम नहीं चाहते, हम चाहते हैं—'**निर्योगक्षेम आत्मवान्**' आपके परायण हो जायँ। एक प्रार्थना है कि हमारा चित्त आपको भूल ही न सके।

नाथ एक बर मागउँ राम कृपा करि देहु।
जन्म जन्म प्रभु पद कमल कबहुँ घटै जनि नेहु॥
अनुज जानकी सहित प्रभु चाप बान धर राम।
मम हिय गगन इंदु इव बसहु सदा निहकाम॥

हे प्रभो! ऐसा प्रेम प्रदान करो, जिस प्रेमके वश हुआ मैं तुम्हें त्याग ही न सकूँ। ऐसी सामर्थ्य दो जिसके बलसे मैं आपका नित्य-निरन्तर चिन्तन करता रहूँ।

भगवान् सर्वोपरि हैं

सबसे बढ़कर परमात्माको समझना चाहिये। भगवान्‌को हर समय भजना यह हमारा काम है और सब काम भगवान्‌के हाथ है। तत्परता श्रद्धाको बताती है। जितना महत्त्व जानेंगे उतनी श्रद्धा होगी। गीतामें भगवान्‌ने दो बातोंपर बहुत जोर दिया है—एक तो मेरा भजन कर, दूसरा मेरी आज्ञाका पालन कर। ब्रह्मका चिन्तन यदि मरते समय भी हो जाय तो बेड़ा पार है। आत्माके महत्त्वको समझना चाहिये। संशयवान् पुरुषको न यह लोक सुखदायक है न परलोक। निष्कामकर्मयोगमें स्थित रहना चाहिये। भगवान्‌को जाननेसे ही शान्तिकी प्राप्ति हो सकती है। अन्तरात्माको लगाकर जो श्रद्धासे युक्त होकर भजते हैं, वे पुरुष भगवान्‌को प्रिय होते हैं। भगवान्‌के संकल्पके आधारमें यह संसार है, इसलिये भगवान्‌के सिवाय कोई वस्तु है ही नहीं। राग-द्वेषको त्यागकर ईश्वरकी शरण होना चाहिये। जिनकी मन-बुद्धि भगवान्‌में है, वह भक्त भगवान्‌को प्रिय है।

जो भगवान्‌की आज्ञा है, वही शास्त्रकी आज्ञा है। जो शास्त्रकी आज्ञा है, वह भगवान्‌की आज्ञा है। भगवद्-अर्थ कर्म है वही सत् है। बिना श्रद्धा किया हुआ दान, ध्यान, जप, तप सब व्यर्थ है। भगवान्‌का ध्यान करना उत्तम है।

ईश्वरके चिन्तनमें बाधा आवे तो भी चिन्तन नहीं छोड़ना चाहिये, ध्यान नहीं छोड़ना चाहिये। कोई अन्य संकल्प आये तो उसी समय छोड़ देना चाहिये, तुरन्त परमात्मामें लग जाना चाहिये। ध्यानमें जहाँ बाधा आवे वहाँ कार्य छोड़ देना चाहिये; किन्तु ध्यान नहीं छोड़ना चाहिये।

कलियुगमें भगवन्नाम-महिमा *

प्रश्न—कलियुगमें नामकी महिमा विशेष क्यों है?

उत्तर—नामकी महिमा चारों युगोंमें बतलायी गयी है। महर्षि पतंजलिने आत्माकी शुद्धिके लिये योगशास्त्र बनाया। वाणीकी शुद्धिके लिये अष्टाध्यायी और शरीरकी शुद्धिके लिये चरकसंहिताकी रचना की। उन्होंने लिखा है—

ईश्वरप्रणिधानाद्वा। तज्जपस्तदर्थभावनम्।

जैसे वायुको रोकना कठिन है वैसे ही मनको रोकना भी कठिन है, किंतु अभ्यास-वैराग्यसे मन वशमें किया जा सकता है और भगवान्‌की शरण होनेसे भी मन वशमें हो सकता है। शास्त्रोंमें, वेदोंमें नामकी महिमा सभी जगह आयी है। कठोपनिषद्‌में कहा गया है कि यही परब्रह्म है, यजुर्वेदमें '**ॐ क्रतोस्मर**'। गीतामें भगवान्‌ने कहा है—

ओमित्येकाक्षरं ब्रह्म व्याहरन्मामनुस्मरन्।

विष्णुपुराणमें बतलाया है—'**कलौ तद्धरिकीर्तनात्।**'

भागवतादिमें बतलाया है—कलियुगमें नामकी महिमा सबसे बढ़कर है। तुलसीदासजी कहते हैं—'***कलियुग केवल नाम अधारा।***'

इससे मालूम होता है कि जगह-जगह नामकी महिमा गायी गयी है।

कलियुगमें नामकी महिमा विशेष इसलिये बतलायी गयी, क्योंकि कलियुगमें योगका, ज्ञानका साधन कठिन है।

सत्ययुगमें दस-दस हजार वर्षतक तप करते थे, किन्तु आज सौ वर्षकी आयु नहीं मिलती, तप कैसे करें। समाधि भी नहीं लगा सकते। कलियुगमें यह होना बहुत कठिन है। ज्ञान होना भी कठिन है। कलियुगमें एक नाम ही आधार है। कलियुगमें मनुष्यकी बुद्धि,

---

* प्रवचन—दिनांक ३-११-४१ दोपहर, गोरखपुर।

ज्ञान, बल कम है। इसलिये नामका साधन सरल बतलाया है। कलिसंतरणोपनिषद्में यह बात आती है।

हरे राम हरे राम राम राम हरे हरे।
हरे कृष्ण हरे कृष्ण कृष्ण कृष्ण हरे हरे॥

यह षोडशमन्त्र कलियुगमें बड़ा ही अच्छा है। कोई शुद्ध हो अशुद्ध हो, चाहे जब जप कर सकता है। इस मन्त्रका साढ़े तीन करोड़ जप करनेसे पापोंसे मुक्त हो जाता है, नित्य एक लाख नाम जपे तो एक सालमें साढ़े तीन करोड़ नाम होते हैं तथा साढ़े तीन करोड़ मन्त्र जपनेमें सोलह वर्ष लगते हैं। भगवान् कहते हैं—'**यज्ञानां जपयज्ञोऽस्मि।**' योग, यज्ञ आदि सब साधन हैं, जपयज्ञ साध्य है। शास्त्रोंमें ऋषियोंका यही सिद्धान्त है। भक्तलोग भी यही कहते हैं—

बारि मथें घृत होइ बरु सिकता ते बरु तेल।
बिनु हरि भजन न भव तरिअ यह सिद्धांत अपेल॥

अत्यन्त दुराचारी भी यदि भजन करता है तो वह साधु ही माननेयोग्य है। पापी-से-पापी भी तर जाता है—'***जबहिं नाम हिरदे धर्‌यो भयो पापको नास।***' भक्तोंके हितके लिये भगवान् अवतार लेकर मनुष्यरूपमें प्रकट हुए।

सुमिरि पवनसुत पावन नामू। अपने बस करि राखे रामू॥
कहौं कहाँ लगि नाम बड़ाई। रामु न सकहिं नाम गुन गाई॥

हनुमान्‌जीने नाम जपकर भगवान्‌को वशमें कर लिया। जो जातिसे नीच थे वे भी नामसे तर गये। त्रेतायुगमें भगवान् रामजीका अवतार हुआ, उस समय भी नामकी महिमा थी।

द्वापरयुगमें भी नामकी महिमा आती ही है। जब भजन-ध्यानका मजा आ जाता है, तब उसे छोड़ ही नहीं सकता। उसको दिलचस्पी हो जाती है। यही सब बात समझनी चाहिये, जिस बातसे परमात्माका ज्ञान हो वही असली विद्या है।

संसारके सम्बन्धसे ही दुःख

सम्बन्धियोंका वियोग होगा यह तो निश्चित है ही, परन्तु इस वक्त भी उनसे क्या सुख है?

एक जाटके सात लड़के थे, एक कुँवारा था छः ब्याहे हुए थे। किसीने पूछा कि तुम्हारे कितने लड़के हैं। इसपर उसने उत्तर दिया कि एक। प्रश्नकर्ताने कहा कि हमने तो सात लड़के सुने हैं। कहा हाँ थे तो सात ही, पर छःको डाकिनियोंने ले लिये, इसको भी डाकिन लेनेहीवाली है।

ससुरारि पिआरि लगी जब तें। रिपुरूप कुटुंब भए तब तें॥

यही सबका हाल है। पुत्र नहीं होता है तो अभावका दुःख है, अवज्ञाकारी होता है तो सन्ताप होता है और होकर मर जाता है तो शोक होता है। आज्ञाकारी होता है, बीमार हो गया या स्वयं उसे छोड़कर मर गये। संसारकी सारी वस्तुओंके सम्बन्धमें ऐसा ही समझना चाहिये। धन नहीं होता है तो अभावका दुःख होता है, धन होता है तो रक्षाकी चिन्ता एवं नष्ट हो जानेका भय बना रहता है और यदि नष्ट हो जाता है, तब उसके वियोगका शोक होता है और उसे छोड़कर स्वयं मरने लगता है तो भी प्राण छटपटाने लगते हैं, जिसके कारण परलोकमें भी उत्तम गति नहीं होती।

उमा राम सम हित जग माहीं। गुरु पितु मातु बंधु प्रभु नाहीं॥
सुर नर मुनि सब कै यह रीती। स्वारथ लागि करहिं सब प्रीती॥

मेरे पाँच-सात लड़के-लड़कियोंका अडंगा नहीं लगा तो अच्छा ही हुआ। हमारी हवेलीके पीछेमें धानुकोंका घर है, उनके सात-आठ लड़के थे, उनकी स्त्री सारे दिन रोती ही रहती थी कि संसारमें मेरे बराबर कोई भी दुःखी नहीं है। अतः पुत्र

आदिसे न जीते सुख है, न मरनेपर सुख है। अनुकूल नहीं होवे तो जीते हुए सुख नहीं मिलता, मरनेपर उसकी स्त्री छातीपर बैठकर दुःख देती है।

संसारमें सबसे बड़ा दुःख पुत्रशोकका है। यदि पुत्र होवे ही नहीं तो उसे क्या दुःख हो। यदि कोई कहे मैं तुमको शाप देता हूँ कि तेरा पुत्र मर जाय। वह कहता है कि तुम्हारा वचन ही झूठा होगा, मुझे पुत्र मरनेका शाप नहीं लग सकता, पुत्र ही नहीं है तो शाप लगेगा कैसे? इस प्रकार होते हुए भी यदि त्याग कर देवे, मनसे मेरापन हटा लेवे तो उसको भी शाप नहीं लगता। होते हुए ही मनसे छोड़ दिया, उसको फिर कुछ दुःख नहीं। सबके साथ उदारताका व्यवहार करे। आये हुए याचकको यथाशक्ति देना चाहिये।

प्रकाशं च प्रवृत्तिं च मोहमेव च पाण्डव।
न द्वेष्टि सम्प्रवृत्तानि न निवृत्तानि काङ्क्षति॥

(गीता १४। २२)

श्रीभगवान् बोले—हे अर्जुन! जो पुरुष सत्त्वगुणके कार्यरूप प्रकाशको और रजोगुणके कार्यरूप प्रवृत्तिको तथा तमोगुणके कार्यरूप मोहको भी न तो प्रवृत्त होनेपर उनसे द्वेष करता है और न निवृत्त होनेपर उनकी आकांक्षा करता है।

गये तो जाओ, आये तो आवो, आतीको नाम सहजां, जातीको मुक्ता। राग-द्वेष नहीं करे।

श्रद्धाकी विशेषता

श्रद्धा प्रेमको साथ रखती है, परन्तु प्रेम बिना श्रद्धाके भी हो सकता है। स्त्रीका पतिमें, माताका बच्चोंमें, गायका बच्चेमें प्रेम होता है, पर वहाँ श्रद्धा नहीं है, इस प्रेमका कोई महत्त्व नहीं है। बिना श्रद्धाका प्रेम मूल्यवान् नहीं है। वैसे अपने-अपने स्थानमें दोनों ही ठीक हैं। सच्चा प्रेम भगवान्में हो वही महत्त्वका है। प्रेमका मूल्य भक्तिके मार्गमें है। भक्ति एवं ज्ञान दोनों ही मार्गोंमें श्रद्धाकी आवश्यकता है। ज्ञानके मार्गमें श्रद्धाकी प्रधानता है। भक्ति और ज्ञान तत्त्वतः एक ही चीज है। ईश्वरमें परम प्रेम अनुराग हो वही भक्ति है। वही असली भक्ति है। इसलिये ऐसा प्रेम ही प्राप्त करना जीवनका चरम लक्ष्य होना चाहिये।

भेदमार्गमें सबसे बढ़कर प्रेम है और ज्ञानमार्गमें सबसे बढ़कर श्रद्धा है। परस्पर तारतम्यता दिखानेके लिये जैसे यह पूछा जाय कि खाद्य पदार्थोंमें सबसे बढ़कर अन्न श्रेष्ठ है या जल? इसी तरह बिना श्रद्धाके प्रेम किस कामका। श्रद्धा होनेसे प्रेम हो जाता है—***'बिनु परतीति होइ नहिं प्रीती।'***

जैसे किसीको सिसकाकर मारना हो तो उसे खूब खानेके लिये दे दे और जल नहीं देवे, इसी प्रकार बिना श्रद्धाका प्रेम है। श्रद्धाके बिना किसीका भी काम नहीं चलता। न भक्तिमार्गवालेका न ज्ञानमार्गवालेका। श्रद्धाके बिना प्रेम भी नहीं ठहर सकता। श्रद्धा हटी कि प्रेम हटा। श्रद्धा मूल जड़ है। भावसहित जो खोजे प्राणी पावे भक्तिरूपी या श्रद्धारूपी मणि।

एक श्रद्धा हो जाय तो सारे काम अपने-आप हो जायँगे। श्रद्धा कम होनेमें केवल अज्ञता, मूर्खता ही कारण है। मूर्खपर चाहे जैसे असर हो जाता है। यह मूर्खता भगवान्की दयासे ही

हट सकती है। दया है तो सही पर फलती नहीं है। फले कैसे? भगवान्‌की शरण होनेसे दया फलती है। जैसे कोई आदमी शिवजीकी मूर्तिकी पूजा करता है। उससे उसको लाभ भी हुआ, परन्तु फिर उसने यह विचार कर लिया कि यह तो पत्थरकी मूर्ति है, इसमें शिवजी थोड़े ही हैं। जैसे यह पत्थर वैसे ही और भी सारे पत्थर हैं लाभ तो हुआ, परन्तु वह तो मेरी श्रद्धासे हुआ, मूर्तिसे थोड़े ही हुआ, तो क्या श्रद्धा करना अपराध हुआ? श्रद्धासे लाभ हुआ तो पत्थरकी मूर्ति अपने लिये तो शिवजी ही हुए। पहले आप पूजते थे तो कहा वह तो हमारी मूर्खता थी। अब आपको लाभ कैसे होगा? कहा मत हो लाभ, मूर्खता कैसे करें? सैकड़ों आदमी परलोक, परमात्मा तथा महात्माओंके विषयमें ऐसा ही कहते हैं। प्रह्लादको धन्य है, पाहनसे परमेश्वरको प्रकट कर दिया, श्रद्धासे ही निकला। अपने भी खम्भेमें या सिल लोढ़ेमें, जलमें, अग्निमें या सूर्यमें किसीमें भी श्रद्धा करें कि यह साक्षात् नारायण हैं। तुम्हारी आत्मामें करो। उसमें भी नहीं हो तो होओ खराब, जन्मो और मरो। अरे भाई! दुनियामें किसीमें तो श्रद्धा करो। बिना आधारके तो दुर्दशा-ही-दुर्दशा है। किसीका तो आधार होना चाहिये। जलमें नौकाका भी आधार होता है तो मनुष्य डूबनेसे बच जाता है। अतः शास्त्ररूपी नौका, ईश्वर, महात्मा किसीका तो आधार होना ही चाहिये। अपने ऊपर कोई एक तो शासन करनेवाला हो। स्वतन्त्र रहा कि डूबा। उसे परस्त्री, शराब, झूठ, कपट करनेमें किसीका भय नहीं रहेगा।

जब शास्त्र ही नहीं मानेगा तो पाप कौन मानेगा। जितने पाप हैं शास्त्र ही तो उनका फैसला देता है। शास्त्रका शासन या महात्माका शासन हो या ईश्वरका भय होना चाहिये। जैसे रोगी

आदमी वैद्यकी बात मानेगा, कुपथ्य नहीं करेगा तो शीघ्र रोगसे छूट जायगा और यदि वैद्यका शासन न मानकर कुपथ्य करेगा तो मर जायगा। उसका शासन मानेगा तो कुपथ्यसे बचेगा। इसी प्रकार महात्माका शासन मानकर चलेगा तो पतनसे बच जायगा। नहीं मानेगा तो नीची योनियोंमें गिरेगा। इस प्रकार उसका पतन ही होगा। परलोक, ईश्वर और महात्मामें श्रद्धा ही पापोंसे बचनेका उपाय है।

भगवान्‌का अस्तित्व न माननेमें पाप, अश्रद्धा ही हेतु है। पूर्व संचित पाप ही कारण हैं, श्रद्धा न भी हो तो भी अच्छे पुरुषोंकी बात मानकर काम करे तो श्रद्धा पैदा हो जाती है। सत्संगमें प्रीति न भी हो तो भी सत्संगमें जाते-जाते प्रीति हो जाती है, जैसे विद्यामें प्रेम न होनेपर भी पढ़ते-पढ़ते प्रेम हो जाता है। इसी प्रकार भजन करते-करते ही भजनमें और भजनीय प्रभुसे प्रेम हो जाता है। जैसे पित्तकी बीमारीमें मिश्री खारी लगती है, परन्तु खाते-खाते ज्यों-ज्यों रोग नष्ट होगा मिश्री मीठी लगने लगेगी, क्योंकि मिश्री वास्तवमें मीठी है। पित्तके रोगकी यही औषधि है। भगवान्‌का भजन वास्तवमें अमृतमय है, इस समय रोगके कारण मीठा नहीं लग रहा है। भजन करते-करते ही प्यारा लगने लगेगा। दवाकी भाँति समझकर भी भजन किया जाय तो भी पापोंका नाश होकर अन्तःकरण पवित्र हो सकता है। जिनको भजनका आनन्द आ गया है वे तो भगवान्‌के मिलनेका सवाल ही नहीं करते। वे पूछते हैं कि भगवान्‌के मिलनेपर भजन तो होगा न? यदि भगवान्‌के मिलनेपर भजन-ध्यान घट जाय तो वह भगवान्‌के मिलनेकी आवश्यकता ही नहीं समझते। प्रेमका तत्त्व भगवान् ही अधिक जानते हैं। यदि यह ऐसे प्रेमी होकर अपने भजनेवालेसे बिना मिले रह सकते हैं तो हमें ही क्या गर्ज पड़ी

है, उन्हें भी गर्ज है। अपने तो उनका भजन करते हैं बस कहीं यह कम न हो जाय।

कोई कहता है कि कितना भजन करनेसे भगवान् मिलेंगे? वह कहता है कि राम-राम यह क्या कह उठा? अरे भजन करनेमें तेरा क्या काँटोंमें हाथ जाता है? जिनको भजन भारी लगता है उनके लिये साढ़े तीन करोड़ 'हरे राम' मन्त्रका विधान है कि इतना जप करनेसे कल्याण होगा।

हमें तो अपने जीवनको भजनपर ही निर्भर कर देना चाहिये, भगवान्‌के मिलनेका सवाल ही नहीं उठावे। कोई पूछे कि आपको भगवान् मिले कि नहीं तो कहना चाहिये कि अरे राम-राम! यह क्या कह उठा? कहाँ मैं अत्यन्त तुच्छ आदमी, कहाँ भगवान्, कोई कहे कि आप भजन करते हैं तो कहे कि यही तो मेरे कलंक है, भगवान्‌के घरमें भी यदि न्याय हो तो मेरे जैसे पामरको भगवान्‌का दर्शन कहाँ? भक्ति करनेवालोंमें अपनेको जो लायक नहीं समझता वह भगवान्‌के नजदीक पहुँचता है और जो कहता है कि मैं इतना भजन-ध्यान करता हूँ, भगवान् उससे दूर हट जाते हैं। भगवान् कहते हैं तू दुनियासे सर्टीफिकेट चाहता है तो तुझे दुनिया मेरे दर्शन करा देगी क्या? जो यह चाहता है कि दुनिया मुझे सबसे श्रेष्ठ माने, वह सबसे नीच है। भगवान् कहते हैं कि दुनिया यदि तुमको सबसे बुरा माने तो तेरी क्या हानि है? जब मैं तुमको श्रेष्ठ मानता हूँ, इसलिये दुनियासे तो अपने गुण छिपाने चाहिये।

अधिकांश आदमी भगवान्‌का भजन-पूजन करते हैं, वह भगवान्‌के लिये नहीं करते, अपितु अपनेको पुजानेके लिये करते हैं। यदि यह विश्वास हो जाय कि अपने-आपको श्रेष्ठ मानना ही पाप है तो फिर देरीका क्या काम है। यह भाव (अपनी

श्रेष्ठताकी इच्छा) हटनेसे ही भगवान् मिलेंगे। भगवान्‌की प्राप्तिमें केवल यही एक बाधा हो रही है। अब तो आपको अपना सारा जीवन भगवान्‌के ही अर्पण कर देना चाहिये। मनसे पूछो कि अब तेरेको क्या चाहिये? एकदम निरपेक्ष होकर रहे अर्थात् सर्वथा सम्बन्धरहित रहे।

दुनियाका मोह बढ़ाना आफत मोल लेनी है। भगवान्‌ने तो यही घोषणा कर दी कि तू मेरेसे ही प्रेम कर। इतना वैराग्य हो जाय कि संसारके जितने भोग पदार्थ हैं सबसे घृणा हो जाय। कंचन-कामिनीका नाम भी अच्छा नहीं लगे। '**समलोष्टाश्मकाञ्चनः।**' रुपयेका नाम सुहावे ही नहीं। विषय-भोगके त्यागके लिये इस श्लोकको याद कर लेवें—

ये हि संस्पर्शजा भोगा दुःखयोनय एव ते।
आद्यन्तवन्तः कौन्तेय न तेषु रमते बुधः॥

(गीता ५।२२)

जो ये इन्द्रिय तथा विषयोंके संयोगसे उत्पन्न होनेवाले सब भोग हैं, वे यद्यपि विषयी पुरुषोंको सुखरूप भासते हैं तो भी दुःखके ही हेतु हैं और आदि-अन्तवाले अर्थात् अनित्य हैं। इसलिये हे अर्जुन! बुद्धिमान् विवेकी पुरुष उनमें नहीं रमता।

युवासे युवा स्त्री चाहे सारे अंगोंका स्पर्श करे, किंचिन्मात्र भी मन चंचल न हो, वही सबसे बढ़कर (स्त्रीविषयक कामविकारसे विचलित न होनेवाला) पुरुष है। खूब वैराग्य हो, वैराग्यवान् होकर संसारमें विचरे।

श्रद्धा कम होनेमें कुसंग और पाप ही कारण है। कोई पापकी परत आ जानेसे या कुसंगमें पड़ जानेसे श्रद्धा हट जाती है।

विषयासक्त पुरुषोंका संग, विषयोंका संग पतन करनेवाला है ही, किन्तु सत्पुरुषोंका संग रहनेपर विषय भी बाधक नहीं हो

सकते। विषयासक्त पुरुषोंका और नास्तिकोंका संग ही सबसे अधिक उसी प्रकार खराब है, जैसे अलकतरेसे बनी हुई सड़क सूर्यकी धूपसे अत्यन्त गरम हो जानेपर होती है। आदमी धूपमें घंटाभर घूम फिर सकता है, उससे इतनी हानि नहीं होती, परन्तु उस धूपसे गरम हुई अलकतरेकी सड़कपर थोड़ी देर भी नंगे पैर खड़ा रहना कठिन है। खड़ा रहेगा तो पैरोंमें छाले पड़ जायँगे, ऐसा क्यों हुआ क्योंकि धूपका संग अलकतरेने कर लिया। इसी प्रकार विषयोंकी अपेक्षा भी विषयी पुरुषोंका संग भयानक है।

सत्संगमें रहे तो चाहे जितने विषय रहें, उनका असर नहीं हो सकता। जैसे गंगाके किनारे धूपका असर नहीं हो सकता। गंगा धूपके असरको अपनी ठंडकसे कम करती रहती है। इसी प्रकार सत्संग विषयोंका प्रभाव कम कर देता है।

विविध प्रश्नोत्तर

सत्संग और साधनके लिये एक नम्बर गंगा किनारा है। स्वर्गाश्रम तथा कर्णवास दोनों ही स्थान ठीक लगे। गंगाजीकी सात्त्विकता है, जगह पवित्र है, वृक्ष हैं, रेणुका, झाड़ी सब पवित्र तथा सात्त्विक है। चार महीना चौमासेमें जल मोटा हो जाता है, प्रकृतिके अनुकूल नहीं पड़ता, बाकी आठ महीना बहुत ठीक रहता है। चित्रकूटमें भी वैराग्ययुक्त भूमि है। गंगा किनारे-जैसी तो मालूम नहीं पड़ी, पर वह भी ठीक है। तीर्थाटनमें जाना हो तब तीन दिनका समय निकालना चाहिये ताकि खूब देखना हो जाय। सत्संग, भजन, ध्यानका साधन तो एक जगह बैठकर करनेमें ठीक है, तीर्थाटनमें तो घूमनेकी ही प्रधानता रहती है, सत्संगका विशेष मौका नहीं मिलता।

गंगा किनारे साधन करे उस जगह तो स्वाभाविक सात्त्विकता मालूम देती है। ध्यान स्वाभाविक ही लगता है। निद्रा आवे तो घूमकर करे, खड़ा-खड़ा जप करे।

प्रश्न—मन हर समय प्रसन्न रहे इसका उपाय बताना चाहिये।

उत्तर—यह उपाय बहुत सीधा है, ईश्वरकी दया, कृपा समझकर हर समय प्रसन्न रहना चाहिये। परमात्माकी अपने ऊपर बहुत दया है, बहुत प्रेम है, यह समझकर हर समय मुग्ध रहे। कोई आदमी मालिकका काम कर रहा है, समझे मालिक तुमपर बहुत प्रसन्न है तो उसको प्रसन्नता हर समय बनी रहेगी, इसी तरह इसमें भी ईश्वरकी दया-प्रेम समझे, यह अच्छा उपाय है।

स्वामीजी—ध्यान विषयकी बात चिट्ठियोंमें देखी है कि

ध्यानका मर्म समझनेसे ध्यान हर समय रह सकता है। कई बातें करनेकी, कई समझनेकी होती हैं, ध्यानका मर्म क्या है?

उत्तर—ध्यानका मर्म जो समझ जाय, उससे फिर ध्यानका त्याग नहीं बन सकता। त्याग नहीं होनेसे वह बराबर ही रह सकता है। कोई भी चीज अच्छी है, उसका मर्म समझ जानेके बाद त्याग नहीं बनता। बालक जो रुपयोंका, स्वर्णका, रत्नोंका तत्त्व नहीं जानता वह उन्हें फेंक देगा, जब बड़ा होकर मर्म जान जायगा, तब नहीं त्यागता है, जब इससे भी बड़ी चीजको जान जाय तो उसका भी त्याग कर देगा। इसी प्रकार ध्यानके तत्त्वको जान जाय तो उससे त्याग बन ही नहीं सकता। जो रुपयोंका तत्त्व जान जाता है, उसके प्राण भले ही चले जायँ, वह रुपयोंका त्याग नहीं कर सकता। इसी तरह वह ध्यानको नहीं छोड़ता। उसका चित्त परमात्माके स्वरूपमें रम जाता है। फिर वह कैसे त्याग कर सकता है। मछली कैसे जलका त्याग कर सकती है। यह जो कुछ दीखनेमें आता है जड़ पदार्थ, अनित्य और नाशवान् है। चेतन नित्य है, उस चेतनका भाव समझमें आ जाय तो सर्वत्र चेतन-ही-चेतन दीखने लगे, फिर उसका त्याग करके जड़ वस्तुकी तरफ लक्ष्य कैसे जा सकता है? उसमें कैसे आनन्द आ सकता है? जागनेपर स्वप्नका पदार्थ कैसे अच्छा लगे, इसी तरह संसारका पदार्थ उसको अच्छा नहीं लगता। ध्यान उसको सुखदायी, रमणीय प्रतीत होने लगता है, उसका मन बाहर जाना ही नहीं चाहता। दूध पीते हुए बछड़ेको कोई स्तनोंसे हटाये तो वह अपनी शक्तिभर नहीं छोड़ता, इसी प्रकार जो ध्यानका तत्त्व समझ जाय, उससे ध्यान कैसे छूट सकता है। उसमें उसको रस आता है। इस प्रकार जिसके मनमें परमात्मा बस गया है वह उसका त्याग कर ही नहीं सकता।

प्रश्न—स्वरूपका लक्ष्य कैसे बँधे।

उत्तर—अपने नेत्रोंको भगवान्‌के चित्रपर सारे अंगोंपर जमाकर फिर मुखारविन्दपर जमाकर अमृतका पान करे।

जिसे ज्ञानके सिद्धान्तसे संसार कल्पित प्रतीत हो, वह चेतनताको अनन्त देखे तो बड़ी प्रसन्नता होवे। उसको वही शान्ति मिलती है जिसकी सीमा नहीं है, वह अटल रहे, वही उसका रसास्वाद है, इसलिये ध्यान नहीं छूटता।

आलस्यका सम्बन्ध खानेके पदार्थोंसे है। जब-जब आलस्य आता है तब उसका कारण सोचे। अधिकांशमें तो यही निष्कर्ष निकलता है कि खानेकी अधिक मात्रा होनेसे ही नींद आती है।

मेरेमें जब उपरामताकी, चेतनताकी वृत्ति जाग्रत् हो जाती है तो गीताके श्लोकको भी भूल जाता हूँ, आदमियोंके नाम भी भूल जाता हूँ, सब चीजोंका अभाव हो जाता है। मन, बुद्धि संसारको छोड़ देते हैं, मन, बुद्धिमें यह रहता है कि संसार स्वप्नवत् है, यह संस्कार जब प्रबल हो जाता है, तब स्वाभाविक ही संसारका अभाव हो जाता है। वास्तवमें परमात्मा ही हैं, संसारका अत्यन्त अभाव है। इस प्रकारकी अवस्था होती ही रहती है। अभावके विपरीत करनेमें कठिनता पड़ती है। विक्षेपमें थोड़ी कठिनता पड़ती है। आलस्यमें ज्यादा कठिनता पड़ती है। चेतनतामें ज्यादा कठिनता नहीं पड़ती, आलस्यमें कठिनता पड़ती है। जैसे आलस्यको हटाना कठिन है, उसके लिये आलस्य लाना कठिन है। इस वक्त वृत्तियोंमें विशेष चेतनता रहती है। लोगोंको भी मालूम हो सकती है।

आलस्य तो सुषुप्ति-अवस्थाको लाकर संसारका अभाव करता है, चेतनता ध्यानावस्थाको लाकर संसारका अभाव करती है।

ब्राह्मणोंके प्रति सद्व्यवहारकी प्रेरणा

महात्मा पुरुषोंके जीवन-चरित्र पढ़नेसे बहुत भारी लाभ है। जैसे ऋषभदेवजी, दत्तात्रेयजी, शंकराचार्यजी आदि कोई आश्रम तथा कोई वर्णमें होवें, उनका जीवन-चरित्र पढ़नेसे यह भाव पैदा होता है कि हम भी ऐसे ही बनें। संसारमें सबकी उन्नति होनेका यह उपाय है कि भक्तिका खूब प्रचार करे। विद्यालयके द्वारा गीता आदिसे और ब्राह्मणोंका बहुत सत्कार करे, जिससे और ज्यादा प्रचार होवे तथा स्त्रियोंसे ज्यादा सम्बन्ध नहीं रखे। धार्मिक विद्या और त्याग—ये दो बातें जरूर होनी चाहिये, इनसे भगवान्‌की बातका बहुत ज्यादा प्रचार हो सकता है। स्त्रियोंसे बोलनेसे यदि मातृभाव रहता हो तो भी दूरसे ही व्याख्यान देना चाहिये। उनसे ज्यादा व्यवहार नहीं रखे। बहुत-से आदमियोंकी उनसे व्यवहार रखनेसे मति डिग जाती है, भगवत्प्राप्तिवालेकी मति तो नहीं डिगती, किन्तु वह भी ज्यादा उन्नति नहीं कर सकता।

ब्राह्मणोंको तन, मन, वाणीसे संतुष्ट करना चाहिये। धन तो पात्र समझो उसे ही दो, बाकी उन्हें संतुष्ट रखनेसे बाधा खड़ी नहीं रहती। उनका खूब सेवा-सत्कार करना चाहिये। हमलोग चाण्डालकी भी सेवा करें तो कोई नुकसान नहीं है।

श्रीरामचन्द्रजी महाराजकी तरफ खयाल करके देखा जाय तो उनका मात्र ब्राह्मणसे कैसा अच्छा व्यवहार था। किसी ब्राह्मणसे रामचन्द्रजी महाराजकी कहीं भी निन्दा सुननेमें नहीं आयी है। श्रीकृष्णचन्द्रजी महाराजका ब्राह्मणोंके साथ पूज्यताका ही बर्ताव देखनेमें आता है, किसी जगह भी निन्दा सुननेमें नहीं आयी। दुर्वासा मुनिका इतना अनुचित व्यवहार होनेपर भी भगवान्‌ने सहन किया।

आज कैसा भी गुणी आ जाय, हमलोगोंको सहन होना मुश्किल है। यह असत् व्यवहार है, जिसे भी भगवान्‌ने सहा है। इसलिये सब ब्राह्मण उनको पूज्य दृष्टिसे देखते हैं। मैं तो महापुरुषोंसे विशेष लाभ नहीं उठा सका, किन्तु आपलोगोंके द्वारा मेरे मरनेके बाद भी ये बातें काममें लायी जायँ तो बहुत लाभ है। अश्वत्थामाने बहुत असत् तथा नीचताका व्यवहार किया। इस प्रकार असत् एवं नीचताका व्यवहार करनेवालेको भी ब्राह्मणपुत्र विचारकर छोड़ दिया। श्रीकृष्णचन्द्रजीको अश्वत्थामाने एक बार यह बात कही कि मुझे एक चीज चाहिये। भगवान्‌ने कहा कि देने लायक होगी तो अवश्य दूँगा। उसने सुदर्शन चक्र माँगा तब भगवान् बोले 'तू ले जा सके तो ले जा।' तब वह अपनेमें जितना बल था लगा लिया, किन्तु उससे तिलमात्र भी सुदर्शन चक्र नहीं उठा। क्योंकि वह देनेका पात्र नहीं था, इसपर भी भगवान्‌ने मना नहीं किया।

मेरे द्वारा ऐसा व्यवहार विशेष रूपसे नहीं बन पाया। यह भगवान्‌की चतुरता ही थी कि उन्होंने मनुष्यमात्रसे ही प्रेम किया। श्रीरामचन्द्रजी महाराजके प्रति कैकेयी तथा मंथराको छोड़कर अन्य किसीका द्वेष देखनेमें नहीं आता। जब वनमें गये तो सब प्रजाको सोयी हुई छोड़कर गये, नगरमें हाहाकार मच गया। अगर सब आदमी साथ जाते तो निभाव नहीं होता, इसलिये साथ नहीं ले गये। साथ नहीं ले जाना उनकी प्रेम बढ़ानेकी चाल है, घटानेकी चाल नहीं है।

भगवान् श्रीकृष्णका ब्राह्मणोंके प्रति बहुत अच्छा व्यवहार था, यदि यह बात मेरे पहले ध्यानमें आ जाती तो कुछ ब्राह्मण जो आज नाराज दिखायी देते हैं, ऐसी बात नहीं होती। सभी कल्याणकामी भाइयोंको इस बातका खयाल रखना चाहिये।

ब्राह्मणोंको प्रसन्न रखनेसे बहुत लाभ है, इनके अनुकूल होनेसे बहुत लाभ है। सदाचार और विद्या इन दो बातोंको धारण करे। इन दो बातोंको छोड़ दे—ब्राह्मणोंके साथ विरोध नहीं करे, स्त्रियोंके साथ संसर्ग नहीं करे। सबका हित चाहे। ये बातें बहुत लाभदायक हैं। जिस प्रकार श्रीरामचन्द्रजी, श्रीकृष्णचन्द्रजीका चरित्र लाभ पहुँचानेवाला है, उसी तरह महात्मा पुरुषका चरित्र लाभ पहुँचानेवाला है। जैसे भक्तमालकी पुस्तक पढ़नेसे बहुत लाभ है। बनायी हुई तो कलियुगके भक्तोंकी है, किन्तु फिर भी बहुत लाभ है।

श्रीकृष्णभगवान्के जमानेमें प्रेम-भक्तिका प्रचार था, उस प्रकारका प्रेम फैले तो संसारमें बहुत ज्यादा आदमियोंका उद्धार होवे। जिसके भगवान्के प्रेम और प्रभावकी बात सुननेसे प्रेम और गद्गदभाव होवे, उतनी ही उसकी श्रद्धा ज्यादा समझी जाती है। गद्गदभाव होना, अश्रुपात होना बड़ी बात समझनी चाहिये। हे प्रभु! मैं यही कोशिश करता हूँ कि मन आपके चरणोंमें लगा रहे, पर यह बलात् संसारकी तरफ जाता है, छोड़ना नहीं चाहता, आप जबरदस्ती इसे अपनी तरफ खींच लें, आप मुझे अपना बना लें।

वैराग्यसे उपरति एवं ध्यान*

आरामसे शौकीनीसे भजन होना मानना मनका धोखा है, आरामसे भजन नहीं होता है। संसारका कोई भोग अपनी इच्छासे नहीं भोगे। वैराग्यसे संसारमें विचरे। ऐसे ही स्त्रियाँ गहने, कपड़े, भोगादिको काममें नहीं लावें, वैराग्यसे रहें। जमीनमें सोना, मोटा खाना, मोटा पहनना चाहिये। सास, श्वशुर, पति यदि न पहननेसे नाराज हों तो उन्हें पहन ले, बादमें रख दे।

भगवान्‌से प्रेम करे, भोगोंमें तो प्रेम है ही। जो सच्चे रसको त्यागकर कुरसमें पड़ा है वही निन्दाका पात्र है। भोगोंका परिणाम दुःख है और वे क्षणभंगुर हैं।

चूरूमें नत्थूरामजी नामके एक विरक्त सन्त थे। दुबले-पतले थे, पहाड़ीपर रतनगढ़ जंगलमें रहते थे। तीन-चार दिनके लिये एक साथ रोटी माँगकर ले आते, छींकेपर टाँग देते, दो-तीन रोटी पानीमें भिगोकर तर कर लेते, उन्हीं रोटियोंको खाकर पानी पी लेते, बड़ी मौजमें रहते थे। घी, नमक आदि कुछ नहीं लेते, लोगोंसे कहते जो कलका बचा हुआ हो उसे दे दो। खूब भजन करते, दूसरी बात नहीं करते। कोई निमन्त्रण देता तो कहते साधुओंको न्यौताका काम नहीं है।

आठ रोटी माँग लेते, चार दिनके लिये पर्याप्त हो जाती। वैसे बासी रोटी नहीं खानी चाहिये, पर वैराग्यमें साधुओंके लिये बासी कुछ नहीं है। वे कहते थे मुझे चार-पाँच दिनकी रखी हुई दे दो। गृहस्थी पानी मिलाकर बनाते हैं और मैं पानी सुखाकर खाता हूँ।

---

* प्रवचन—दिनांक १२-५-१९४०, वटवृक्ष, स्वर्गाश्रम।

मंगलनाथजीकी मंडलीमें मंगलनाथजी, नत्थूरामजी, लक्ष्मीनाथजी ये बड़े विरक्त संत थे। मंगलनाथजीसे कोई कहता, महाराज उसका शरीर बरत गया। वे कहते—मर गया सो मर गया, उसकी तो बात ही साधुओंको मत सुनाओ। सत्संगकी बात होते समय किसी गृहस्थीने अपने घरकी राग-द्वेषकी बात छेड़ दी। वे शिव-शिव कहकर चेता देते, दुबारा फिर कहता तो वे शिव-शिव कहते-कहते उठ जाते। कभी-कभी कहते—इन बातोंमें क्या, भजन करो। फालतू बातें कहनेपर शिव-शिव कहते चले जाते।

मैंने साधुओंकी कई वैराग्यकी बातें देखी हैं, बातोंसे क्या है? असली वैराग्य हो तब है। असली वैराग्य हो तब आनन्द आवे।

हरेक भाईको याद रखना चाहिये। वैराग्यका आनन्द सांसारिक आनन्दसे लाखों गुना है, यदि मालूम हो जाय कि संसारके भोगोंमें आनन्द नहीं तो वैराग्य होनेपर उसे छोड़ दे।

वैराग्यसे अधिक रस भगवान्‌के ध्यानमें है। '**रमन्ति च**' प्रभुके साथमें सभी इन्द्रियोंका रमण अलौकिक है, सगुण और निर्गुण दोनोंमें ही रमण होता है।

योऽन्तःसुखोऽन्तरारामस्तथान्तर्ज्योतिरेव यः।
स योगी ब्रह्मनिर्वाणं ब्रह्मभूतोऽधिगच्छति॥

(गीता ५। २४)

जो पुरुष अन्तरात्मामें ही सुखवाला है, आत्मामें ही रमण करनेवाला है तथा जो आत्मामें ही ज्ञानवाला है, वह सच्चिदानन्दघन परब्रह्म परमात्माके साथ एकीभावको प्राप्त सांख्ययोगी शान्त ब्रह्मको प्राप्त होता है।

बाह्यस्पर्शेष्वसक्तात्मा विन्दत्यात्मनि यत्सुखम्।
स ब्रह्मयोगयुक्तात्मा सुखमक्षयमश्नुते॥

(गीता ५। २१)

बाहरके विषयोंमें आसक्तिरहित अन्तःकरणवाला साधक आत्मामें स्थित जो ध्यानजनित सात्त्विक आनन्द है, उसको प्राप्त होता है; तदनन्तर वह सच्चिदानन्दघन परब्रह्म परमात्माके ध्यानरूप योगमें अभिन्नभावसे स्थित पुरुष अक्षय आनन्दका अनुभव करता है।

निराकारमें रमण करनेवालोंके लिये इन दो श्लोकोंमें आनन्दका खजाना भरा पड़ा है। '**तुष्यन्ति च रमन्ति च**' सगुणमें रमण करनेवालोंके लिये इसमें आनन्द भरा पड़ा है।

शास्त्रोंमें निर्गुणकी उपासना सगुणकी अपेक्षा कठिन बतलायी है, पर मुझे तो दोनों ही उपासना सरल मालूम देती है। वह आनन्द प्रत्यक्ष दीखता है। बात सच्ची है लोग विश्वास करें या न करें, बात सोलह आना सच्ची है।

यह प्रत्यक्ष बात है कि भोगोंसे अधिक सुख वैराग्यमें है, वैराग्यसे अधिक उपरतियुक्त वैराग्यमें, इनसे अधिक भगवान्के ध्यानमें और उससे अधिक भगवान्की प्राप्तिमें सुख है।

परमात्माके सिवाय अन्य कुछ नहीं है, जो कुछ है परमात्मा ही है।

विहाय कामान् यः सर्वान् पुमांश्चरति निःस्पृहः।
निर्ममो निरहङ्कारः स शान्तिमधिगच्छति॥

(गीता २। ७१)

जो पुरुष सम्पूर्ण कामनाओंको त्यागकर ममतारहित, अहंकाररहित और स्पृहारहित हुआ विचरता है, वही शान्तिको प्राप्त होता है अर्थात् वह शान्तिको प्राप्त है।

प्रत्यक्ष ऐसा नित्यप्रति दो मिनट ही अभ्यास करे, बोले, कुछ नहीं चाहिये।

प्रश्न—मनमें इच्छा बनी है।

उत्तर—उन्हें हटाकर निष्कामी बनो। यदि न माने तो घूस देकर उन्हें छोड़ दो।

राजा साहब—घूस क्या है?

उत्तर—चूरूमें मिश्रीनाथजी और भानीनाथजी दो साधु थे। रूखा-सूखा खाते, भजन करते। पूछा जाता मीठा चाहिये? गुड़, दो छुआरा दे दिया जाय। आज क्या चाहिये? दो टुकड़ा! थोड़ा घी दूँ? नहीं, दो टुकड़ा खोपरेकी चिटकी ला दो, घी नहीं। न कभी मीठा खाते, न कभी घी खाते। सालमें दो-चार बार दो तोला गुड़ दे दिया जाता। एक समय खाना, रात-दिन भजन करना, बस यही काम था। थोड़ी देरके लिये लोग उनके पास आ पाते थे। कहते—रातको घर चले जाओ, घरके लोग प्रतीक्षा करते होंगे।

वैराग्य होनेसे उपरति और ध्यान तो आप ही होते हैं। वृत्तियोंमें स्वाभाविक ही वैराग्य होना चाहिये। मरुभूमिमें जलकी भ्रान्तिकी भाँति विषयोंमें सुख है ही नहीं।

आपलोग इतने आदमी बैठे हैं। किसी क्षण वैराग्य होनेसे शान्ति मिलती है, ध्यान लगता है ध्यानमें शान्ति मिलती है। वैराग्यसे उपरामता होती है, उपरतिसे संसार खो जाता है,सत्ताहीन हो जाता है। फिर ध्यान स्वतः ही होने लगता है, करनेकी कोई आवश्यकता नहीं पड़ती। भूख-प्यासकी तरह स्वतः ही बलात् ध्यान होता है। प्यास तो ठहर-ठहरकर आती है, पर यह तो हमेशाके लिये होता है। रस आनेके कारण छोड़ा नहीं जा सकता। बालक स्तन नहीं छोड़ता, माँ छुड़ाती है। इसी तरह युक्ति कहती है कि पूरी उम्रमें ध्यान नहीं छूटना चाहिये, पर छूट जाता है। निराकारका ध्यान देहमें अहंकार होते हुए बहुत सरल है। मुझे तो बहुत सीधा रास्ता लगता है, साकार तो सुगम है ही।

चारों ओर आकाश है ही, आकाश ही आनन्द है, आनन्द ही परमात्मा है। वह आनन्द बाहर-भीतर सब जगह परिपूर्ण हो रहा है। आनन्दमें रमण करता हुआ चले। अहा, क्या आनन्द है! आनन्द-ही-आनन्द, कितना सरल साधन है! मेरा प्रत्यक्ष अनुभव है। आनन्द सगुण और चेतन है। पहले आनन्द ही पकड़े और बातोंको छोड़ दे।

मनसे अनुभव करे, मनन करके वाणीसे 'आनन्द-आनन्द-आनन्द' उच्चारण करे और सभी कुछ छोड़ वाणीसे यही जप, मनसे ध्यान करे, रामकी जगह आनन्दका अनुभव करे, आनन्दका जप करे।

पापोंका फल दुःख*

सारे संसारके प्राणी मात्र सुख चाहते हैं, दुःख कोई नहीं चाहता, सुख निरन्तर चाहते हैं। दुःख सभीको भोगना पड़ता है, चाहता कोई नहीं।

शास्त्रोंमें कहा है—पापका फल दुःख और पुण्यका फल सुख है। जो लोग दुःख भोग रहे हैं वे पापका फल भोग रहे हैं, जो सुख भोग रहे हैं वे पुण्यका फल भोग रहे हैं। इससे यह निष्कर्ष निकालना चाहिये कि हमें पाप नहीं करना चाहिये। जो पाप करता है उसे दण्ड मिलता है। बिना गुनाह करे दण्ड मिले, ऐसा भगवान्के राज्यमें हो ही नहीं सकता। मनमें निश्चय करना चाहिये कि हमें पाप करना ही नहीं है।

इससे बढ़िया बात बतलायी जाती है। हम संसारमें प्रत्यक्ष सुख-दुःख देखते हैं। हम चाहते हैं सुख, दुःख नहीं चाहते, ऐसा प्रयास करना चाहिये कि दुःखका अत्यन्ताभाव हो जाय और सुख-ही-सुख मिले।

आजसे आगे सदा सुख-ही-सुख मिले, इसका उपाय हो सकता है। शास्त्र कहते हैं—दुःखका अत्यन्ताभाव हो सकता है और सुख-ही-सुख मिल सकता है। दुःखोंके कोई-कोई दो भेद कहते हैं—आधि यानी मनकी पीड़ा और व्याधि यानी शरीरकी पीड़ा।

सभी धर्मावलम्बी जो किसी भी धर्मको माननेवाले हैं, ऐसा मानते हैं कि दुःखोंका अत्यन्ताभाव और निरन्तर आनन्द प्राप्त हो सकता है। यह मनुष्य-योनिमें प्राप्त हो सकता है। मनुष्य-

---

* प्रवचन—दिनांक १२-५-४० स्वर्गाश्रम।

योनि प्राप्त है ही। तब हम प्रयत्न क्यों नहीं करते? हम जो प्रयत्न करते हैं वह कैसा है? हमारा समय व्यर्थ तो नहीं जाता? विचारसे मालूम होता है कि हमारेमें कमी है। हमारे मरनेपर हमारा उत्तराधिकारी हमारी कमी पूरी नहीं करेगा। सारी दुनिया सदाके लिये आनन्द चाहती है। हमारा समय इस कामके लिये बीतता है या नहीं। तुलसीदासजी कहते हैं—

सो परत्र दुख पावइ सिर धुनि धुनि पछिताइ।
कालहि कर्महि ईस्वरहि मिथ्या दोस लगाइ॥

आगे दुःख पायेगा और सिर धुन-धुनकर पछतायेगा। रोना-रोना है, मिलना कुछ नहीं है। संसारमें वही बुद्धिमान् है जो अपने समयका प्रत्येक क्षण उसीके प्रयत्नमें बितावे, यानी भगवान्‌के भजनमें बितावे।

कबिरा नौबत आपनी दिन दस लेहु बजाइ।
यह पुर पट्टन यह गली बहुरि न देखहु आइ॥
काल करन्ता आज कर आज करन्ता अब।
पलमें परलय होयगी बहुरि करेगो कब॥

जल्दी काम बना लो। भगवान् कहते हैं—

अनित्यमसुखं लोकमिमं प्राप्य भजस्व माम्॥

(गीता ९। ३३)

तू सुखरहित और क्षणभंगुर इस मनुष्यशरीरको प्राप्त होकर निरन्तर मेरा ही भजन कर।

श्रुति कहती है—'**उत्तिष्ठत जाग्रत प्राप्य वरान्निबोधत**' उठो, जागो, महान् पुरुषोंके पास जाकर उनके द्वारा उस परब्रह्म परमेश्वरको जान लो। हमें सावधान होना चाहिये, जागना चाहिये।

सबसे जरूरी यही काम है। जिस आनन्दसे बढ़कर और

कोई नहीं है, उसीके लिये प्रयत्न करना चाहिये। वहाँ सारे दुःखोंका अन्त हो जाता है।

प्रसादे सर्वदुःखानां हानिरस्योपजायते।
प्रसन्नचेतसो ह्याशु बुद्धिः पर्यवतिष्ठते॥

(गीता २। ६५)

अन्तःकरणकी प्रसन्नता होनेपर इसके सम्पूर्ण दुःखोंका अभाव हो जाता है और उस प्रसन्न चित्तवाले कर्मयोगीकी बुद्धि शीघ्र ही सब ओरसे हटकर एक परमात्मामें ही भलीभाँति स्थिर हो जाती है।

यह इतना विलक्षण आनन्द है कि इससे बढ़कर और कोई आनन्द नहीं है—

यं लब्ध्वा चापरं लाभं मन्यते नाधिकं ततः।
यस्मिन् स्थितो न दुःखेन गुरुणापि विचाल्यते॥

(गीता ६। २२)

परमात्माकी प्राप्तिरूप जिस लाभको प्राप्त होकर उससे अधिक दूसरा कुछ भी लाभ नहीं मानता और परमात्मप्राप्तिरूप जिस अवस्थामें स्थित योगी बड़े भारी दुःखसे भी चलायमान नहीं होता।

उसके पानेके लिये प्रयत्न करना चाहिये। मौका नहीं जाने देना चाहिये। यही युक्ति है, यही साधन है। योग, वेदान्त सभीका लक्ष्य यही है। मुक्ति, भगवत्प्राप्ति आदि सभी एक हैं। उसे नहीं प्राप्त किया तो मनुष्य-जन्म नष्ट हो गया। प्रभुकी बड़ी दयासे सभी सामग्री एकत्रित हो गयी है। उत्तम देश, उत्तम काल, भागीरथीका तट इससे बढ़कर और कोई स्थान नहीं है, वटका वृक्ष, मायापुरी, तीर्थस्थान, नीचे गंगाकी रेणुका, स्थानमें कोई कमी नहीं है। कलियुगके समान उत्तम काल कोई नहीं है—

कलिजुग सम जुग आन नहिं जौं नर कर बिस्वास।
गाइ राम गुन गन बिमल भव तर बिनहिं प्रयास॥

यदि कोई विश्वास करे तो बिना प्रयासके तर सकता है। मनुष्यसे बढ़कर उत्तम कोई योनि नहीं जो मिल गयी, भगवत्-चर्चा मिल गयी, यदि ऐसे संयोगसे भगवत्प्राप्ति नहीं हुई तो फिर सिवाय पछतानेके कुछ नहीं हाथ लगेगा—

जो न तरै भव सागर नर समाज अस पाइ।
सो कृत निंदक मंदमति आत्माहन गति जाइ॥

ऐसा व्यक्ति निन्दाका पात्र है, आत्महत्यारेकी गतिको प्राप्त होता है। सबसे जल्दी यह काम कर लेना चाहिये। अन्य जरूरी कामोंकी पूर्ति उत्तराधिकारियोंद्वारा हो जायगी। इस कामकी पूर्ति तुम्हारे सिवाय कोई नहीं करेगा।

ध्यान न हो, पूजा न हो तो कोई बात नहीं, केवल एक भगवान्‌का निरन्तर भजन करो। केवल नाम-जपसे सब काम सिद्ध हो जाता है, सब पापोंका नाश हो जाता है।

जबहिं नाम हिरदे धर्‌यो भयो पापको नास।
जैसे चिनगी अग्निकी परी पुराने घास॥

पापोंका नाश तो हो जाय पर ज्ञान कैसे मिले?

राम नाम मनिदीप धरु जीह देहरीं द्वार।
तुलसी भीतर बाहेरहुँ जौं चाहसि उजिआर॥

राम-नाम-मणिसे बाहर-भीतर सब जगह ज्ञान-ही-ज्ञान हो जाता है। नामसे ही भगवान्‌की प्राप्ति, मुक्ति, पापोंका नाश सब कुछ हो सकता है। गीतामें भगवान् कहते हैं—

तेषां सततयुक्तानां भजतां प्रीतिपूर्वकम्।
ददामि बुद्धियोगं तं येन मामुपयान्ति ते॥

(गीता १०। १०)

उन निरन्तर मेरे ध्यान आदिमें लगे हुए और प्रेमपूर्वक भजनेवाले भक्तोंको मैं वह तत्त्वज्ञानरूप योग देता हूँ, जिससे वे मुझको ही प्राप्त होते हैं।

केवल भगवान्‌का भजन करना चाहिये।

तुलसीदासजीने तो नामकी महिमा गायी है पर गीतामें भगवान्‌ने कहा है—'**यज्ञानां जपयज्ञोऽस्मि**' अन्य तो मेरी प्राप्तिके साधन हैं, पर जप तो मेरा स्वरूप ही है। किसीने कहा नाम तो मुझे निरन्तर जपना पड़ेगा। कल्याण तो तुम्हारा ही होगा।

भगवान्‌की असीम दया है, इस दयाका विश्वास कर लो, मान लो, इस मोदमें मुग्ध होते रहो। गीता कहती है—

सुहृदं सर्वभूतानां ज्ञात्वा मां शान्तिमृच्छति॥

(गीता ५। २९)

मुझे सुहृद् अर्थात् स्वार्थरहित दयालु और प्रेमी, ऐसा तत्त्वसे जानकर शान्तिको प्राप्त होता है।

भगवान्‌की दयाको मान ले, जान ले तो परम शान्ति मिलती है।

भगवान्‌के गुण-प्रभाव*

वास्तवमें जो भगवान्‌के तत्त्व-रहस्यके ज्ञाता परम भक्त होते हैं, वे ही भगवान्‌के गुण-प्रभावको जानते हैं। यों तो भगवान्‌के गुण-प्रभाव अनन्त तथा अपरिमित हैं, उनके गुणोंकी संख्या तथा सीमा नहीं है। इन दोनोंका अर्थ है कि भगवान्‌का प्रभाव अपरिमित है। गुण भी उनके अथाह हैं। जैसे समुद्रमें पानीकी थाह नहीं है, उसी प्रकार भगवान्‌के गुणोंकी भी थाह नहीं है। सागरका उदाहरण भी यथोचित नहीं है, उसकी भी सीमा है, किन्तु परमात्माके गुणोंकी सीमा ही नहीं है, वे तो गुणोंके सागर ही हैं। सागरमें जैसे जल-ही-जल होता है, उसी प्रकार भगवान्‌में भी गुण-ही-गुण हैं। संसारमें जितने भी गुण हैं सभी उस गुणसागर परमात्माके अंशका ही प्रतिबिम्बमात्र है। सांसारिक मनुष्योंमें गुणोंके नामसे जो चीज विख्यात है, वह सारी-की-सारी परमात्माके एक अंशका प्रतिबिम्बमात्र भी शायद ही हो। कई गुण तो प्रत्यक्ष हैं ही नहीं, पुस्तकोंमें भी नहीं हैं। जो कुछ हैं वे भी बहुत ही कम हैं। धर्मविषयक, गुणविषयक, भक्तिविषयक पुस्तकें इस संसारमें बहुत ही कम प्राप्त हैं। वेदोंकी बहुत शाखाएँ थीं, प्रायः सभी अप्राप्त हैं। वेदरूपी वृक्षकी जटाएँ भी अप्राप्त हैं। विधर्मियोंने अपने राज्यकालमें हमारे साहित्यको बहुत नष्ट-भ्रष्ट किया, बचा-खुचा ही रहा है। कलियुगके अन्तमें सभी शास्त्र नष्ट हो जाते हैं, फिर सत्ययुगमें भगवान्‌से ही प्रकट होते हैं। पुराणोंमें अठारह पुराण रहे हैं, किन्तु अभी नेपालमें अठारह उपपुराण, अठारह महापुराण, अठारह अतिपुराण इस प्रकार कुल चौवन पुराण हैं। चाहें तो नकल

---

* प्रवचन—दिनांक २४-४-१९५२।

करके ला सकते हैं, किन्तु पुस्तक नहीं देते। जो कुछ भी मिल रहे हैं वे आगे जाकर मिलने कठिन हो जायँगे। शास्त्रोंमें भगवान्‌के गुणानुवादकी बातें जो कुछ मिल रही हैं वह तो बूँदमात्र है, ऐसा समझना चाहिये। वास्तवमें जो अनुभवी हैं, यानी परमात्माको प्राप्त कर चुके हैं, उनमें जो भाव आता है, वह भी अल्प ही है। भगवान् तो अनन्त तथा अपरिमित हैं। महान् आकाशका प्रतिबिम्ब जिस प्रकार दर्पणमें नहीं आ सकता, उसी प्रकार दर्पणरूपी बुद्धिमें आकाशरूपी परमात्माके गुणोंका प्रतिबिम्ब भी नहीं आ सकता। जो कुछ आता है मन उसकी कल्पना नहीं कर सकता। मनमें जितनी कल्पना होती है उतना कहना मुश्किल है। यदि कह भी दें तो लेखके रूपमें लाना तो और भी कठिन है। शब्दोंमें जो आ सके वही लिखा जा सकता है। वक्ता वाणीके द्वारा जितना कहता है, उसीको समझ सकते हैं। मनके भावको हम कैसे समझ सकते हैं। वास्तवमें तो परमात्माके गुण अपरिमित हैं। महात्माओंके मनमें भी भगवान्‌के गुण नहीं आ सकते। मैं तो एक साधारण आदमी हूँ, मैं क्या कह सकता हूँ? बताऊँ तो क्या बतलाऊँ? मैं जो भगवान्‌के गुणोंके प्रभावका वर्णन करता हूँ, भगवान् हँसते हैं, कहते हैं देखो मेरे गुण-प्रभावका वर्णन करता है, जिसे मैं भी नहीं गा सकता, यह कैसा बालक-सा कहता है। तुलसीदासजी कहते हैं—

कहौं कहाँ लगि नाम बड़ाई। रामु न सकहिं नाम गुन गाई॥

मैं भगवान्‌के नामकी बड़ाई कहाँतक बताऊँ, राम स्वयं भी अपने नामकी महिमाका गान नहीं कर सकते। फिर मेरी तो बात ही क्या है? भगवान्‌में जो गुण हैं वही नाममें हैं।

नाम-जपसे वे गुण गायकमें भी आते हैं। जैसे बीजमें वृक्ष है। भूमिमें बीज बोनेसे वह निकल जाता है, उसी प्रकार

हृदयरूपी भूमिमें राम-नामरूपी बीज बोनेसे वृक्ष पैदा हो सकता है। नाममें अनेक गुण हैं, मेरी तरफसे तो गुणोंकी स्तुति-निन्दा ही है। जैसे किसीके पास पारस होवे और कोई कहे कि यह लखपति है तो वह हँसता है, कहता है देखो, मैं एक दिनमें हजारों लखपति बना सकता हूँ, यह मुझे लखपति ही कहता है। उसी प्रकार मैं उनके गुणोंका वर्णन करता हूँ। उनमें तो इतने ज्यादा गुण हैं कि वे स्वयं ही उनका वर्णन नहीं कर सकते। वे सोचते हैं कि मैं भी जब वर्णन नहीं कर सकता तो यह वर्णन करनेको चला है। यह एक प्रकारसे स्तुति होते हुए भी निन्दा ही है।

इस विषयमें एक कहानी आती है कि दो कुम्हारियाँ जंगलमें घूम रही थीं। उधरसे ही एक राजकुमार आ निकला। उसने सोनेका कड़ा पहन रखा था। एक कुम्हारीने कहा देखो सोनेका कड़ा पहन रखा है, दूसरीने कहा सोनेका ही क्या यह तो गुड़का भी पहन सकता है। उसे तो बढ़िया वस्तुओंमें गुड़-ही-गुड़ दीखता है, उसके सामने गुड़के समान कोई दूसरा पदार्थ है ही नहीं, वह तो सबसे मूल्यवान् वस्तु उस गुड़को ही समझती थी।

ठीक इसी प्रकार भगवान् भी हँसते हैं कि देखो यह मेरे गुणोंका वर्णन करता है, जिनका वर्णन मैं स्वयं भी नहीं कर सकता।

जिस जगह जिस चीजका अभाव है उस चीजको समझाना बड़ा ही कठिन है। पातालमें जाकर यदि हम कहें कि ऊपर संसारमें दिन होता है, बड़ा ही प्रकाश होता है तो वे अग्नि जलाकर बताते हैं कि इतना प्रकाश होता है? हम कहेंगे— नहीं, इससे तो कई गुना अधिक प्रकाश होता है। तब वह लाख पावरका लट्टू जलाता है और पूछता है कि इससे भी ज्यादा होता है? वह कहता है—हाँ, इससे भी ज्यादा प्रकाश होता है, यह तो उसके किसी अंशकी चीज है ही नहीं। वह उन्हें कहता

है कि यदि तुम हमारे साथ चलो तो हम तुम्हें दिखा दें। वह रात्रिमें ऊपर आया, उस समय तारे उदय हो रहे थे। उसने कहा—क्या यही दिन है? उसने कहा—यह तो रात है! वह रात्रिको भी दिन ही समझता है। जब सूर्योदय होने ही वाला था तब उसने कहा— सूर्योदय हो गया क्या? नहीं, अभी तो सूर्योदय हुआ ही नहीं, यह तो अरुणोदय ही हुआ है। जब सूर्य उदय होता है तब वह भौचक्का-सा रह जाता है। तब फिर वह वापस जाकर अपनी भाषामें भी उस सूर्यका वर्णन पातालवासियोंको नहीं बता सकता। जरा सोचिये कि जब कोई भगवान्‌को देखा ही नहीं तो वह समझे तो कैसे समझे? हमारी बुद्धिमें क्या आवे? एक अंशका प्रतिबिम्बमात्र आना भी बड़ा ही मुश्किल है। चन्द्रमा और उसके प्रतिबिम्बमें जितना भेद है उतना ही परमात्माके गुणोंमें तथा उनके गुणोंके एक अंशके प्रतिबिम्बमें भेद है। हममें तो नकली है, एक प्रकारसे आभासमात्र ही है। परमात्मामें ही असली गुण हैं। हमारेमें छः विकार हैं, हमारे तो घटते-बढ़ते दीखते हैं, परन्तु परमात्मा तो निर्विकार हैं। क्षय-वृद्धि भगवान्‌के गुणोंमें नहीं होती, पर हमारे गुण उत्पन्न तथा नष्ट होते हैं। हमारेमें परिवर्तन भी है, किन्तु परमात्मामें और उनके गुणोंमें ये विकार नहीं होते, वे तो इन विकारोंसे सर्वथा निर्लेप हैं। हमारे गुणोंमें तो फिर भी दोषदृष्टि की जा सकती है, भगवान्‌के गुणोंमें तो दोषकी कल्पना भी नहीं की जा सकती है। यदि कोई भगवान्‌के गुणोंमें दोषदृष्टि करता है तो वह उनके गुणोंको सुननेका अनधिकारी होता है। भगवान् गीतामें कहते हैं—

इदं ते नातपस्काय नाभक्ताय कदाचन।
न चाशुश्रूषवे वाच्यं न च मां योऽभ्यसूयति॥

(गीता १८। ६७)

हे अर्जुन! जो तपहीन है, भक्तिहीन है, उसको ये हमारी गोपनीय बातें भूलकर भी नहीं कहना तथा जो दोष-बुद्धिवाले हैं उनको भी नहीं कहना।

भगवान् चाहे निन्दा समझें या स्तुति, कुछ-न-कुछ तो कहना ही पड़ेगा। प्रसंग आ गया है।

भगवान्‌में कितनी क्षमा है, इसका कोई अनुमान नहीं लगा सकता है। प्रथम तो क्षमा उनका स्वरूप ही है, जो कोई भी अपराध करे उसका बदला न चाहना, किसी प्रकार भी कोई गाली दे या मारपीट करे, किसी प्रकार भी निन्दा करे, बदला न चाहकर संतुष्ट रहनेका नाम ही क्षमा है। पहले क्षमा नहीं करना, वैसा ही बदला देना, फिर पंचोंसे बदला दिलवाना, फिर सरकारमें नालिस (रिपोर्ट) करना, मान-अपमानका दावा करना या भगवान्‌से प्रार्थना करना कि हे भगवन्! इसने मुझे बड़ा ही तंग किया है इसे दण्ड दे—यहाँतक क्षमा नहीं समझनी चाहिये। असली क्षमा तो वही है कि अपराध करनेवालेके हृदयमें जो दुःख या संकोच हो कि मैंने यह गलती की, असलमें यह गलती मेरी ही है। उस भय या दुःखको सर्वथा हटानेकी चेष्टा करे। इससे बढ़कर तो अभीतक आविष्कार ही नहीं हुआ। हम फिर आगे वर्णन कैसे कर सकते हैं। आविष्कार हो तो समझमें आये।

एक कथा आती है कि एक बार ऋषि-मुनियोंने इकट्ठे होकर एक सभा की और कहा कि यह देखना चाहिये कि ब्रह्मा, विष्णु और महेश इन तीनोंमें कौन सात्त्विक है, कौन राजसी तथा कौन तामसी है। इस बातकी परीक्षाके लिये भृगुजीको चुना गया। वे सर्वप्रथम शिवजीके पास गये और उन्हें अपशब्द कहे। शिवजीको क्रोध आ गया और वे त्रिशूल लेकर उनके पीछे दौड़े। किसी तरह पिण्ड छुड़ाकर वे ब्रह्माजीके पास गये और वहाँ अकड़कर

खड़े हो गये। ब्रह्माजीने मनमें सोचा कि यह तो मेरा पुत्र है, इसे तो पिता-पुत्रकी तरह व्यवहार करना चाहिये। यह न तो प्रणाम ही करता है और न कुछ कहता ही है। वे मन-ही-मन क्रुद्ध हुए तो भृगुजी फिर विष्णुभगवान्‌के पास गये। जब वे गये तो विष्णुभगवान् आनन्दसे सो रहे थे। वे गये और उन्होंने विष्णुभगवान्‌के लात मारी और कहा कि मैं तो इनके पास आया हूँ और ये सो रहे हैं। इतनेमें ही विष्णुभगवान् उठे और भृगुजीसे कहने लगे कि भृगुजी! मेरी छाती बड़ी कठोर है, आपके पैर बड़े ही कोमल हैं, चोट लगी होगी। उनके पैरको दाबने लगे। पैरोंको चापकर कहा कि क्या बात है, कैसे पधारे? उन्होंने कहा—ऐसे ही आ गया। फिर वे वहाँसे आ गये और अन्तमें आकर यही निर्णय दिया कि शिवजी तामसी, ब्रह्माजी राजसी तथा विष्णुभगवान् सात्त्विक हैं। क्षमा सत्त्वगुणका ही एक प्रबल अंग है। जो सात्त्विकभाव हैं वे ही संसारमें गुणोंके नामसे विख्यात हैं। भगवान्‌में तो दिव्य गुण हैं, वे तो गुणोंकी खान हैं। जिस प्रकार खानको खोदते जाओ, उसमें सोना मिलता ही जायगा। ठीक उसी प्रकार भगवान्‌के गुणोंकी कितनी ही खोज करो, आगे मिलते ही जायँगे। उनके गुण मायासे अतीत हैं। मायासे सम्बन्धित होकर ही वे गुण मनुष्योंमें आते हैं। संसारमें कोई भी ऐसा पदार्थ नहीं है जो इन तीनों गुणोंसे रहित हो। संसारमें सत्त्वगुण ही असली गुण है। त्रिगुणातीत भगवान् ही हैं। सत्त्वगुण तो उनके गुणोंके एक अंशका प्रतिबिम्बमात्र है। महत्तत्त्व ही वास्तवमें उसे समझ सकता है। हमारी सबकी बुद्धि मिलाकर महत्तत्त्वका एक अंश ही होता है। महत्तत्त्वका जो एक सूक्ष्मातिसूक्ष्म अंश है, वही हमारेमें आता है। प्रतिबिम्बमात्र ही समझना चाहिये। महत्तत्त्व भगवान्‌की बुद्धिका ही नाम है। उनकी

बुद्धिमें भी गुणातीत भगवान्‌के गुणोंका प्रतिबिम्बमात्र ही आता है। जब उनकी बुद्धिमें ही प्रतिबिम्ब आता है तो हमारी बात ही क्या है? भगवान् स्वयं भी अपने गुणोंका वर्णन नहीं कर सकते। यह क्षमाका दिग्दर्शन कराया। भगवान् अपना अपराध करनेवालोंकी तरफ ध्यान नहीं देते हैं। जब दूसरोंकी तरफ भी नहीं देते हैं तो भक्तोंके अवगुणोंकी तरफ तो देखेंगे ही कैसे?

जन अवगुन प्रभु मान न काऊ। दीनबंधु अति मृदुल सुभाऊ॥

भगवान् अपने भक्तोंके दोषोंको नहीं देखते। वे दीनबन्धु हैं, उनका स्वभाव बड़ा ही कोमल है। यदि कहो कि भक्तोंके अवगुणोंकी तरफ नहीं देखते तो क्या उनके भक्तोंमें अवगुण हैं! नहीं ऐसी बात नहीं है। उनसे दोष हो तो जाता है, किन्तु परम दयालु भगवान् उनके दोषोंको सर्वथा मिटा देते हैं। जैसे बच्चा अपने शरीरके मैल लगा लेता है तो माँ उसे साफ कर देती है, यदि वह माँको मारता भी है तो माँ उसे समझा-बुझाकर ठीक कर देती है, उसी प्रकार भगवान् भी अपने भक्तोंको माँकी तरह साफ कर देते हैं।

एक कथा आती है कि एक बार नारदजी भगवान्‌के पास आये और कहने लगे कि हे भगवन्! कल एक राजकन्याका स्वयंवर है, इस स्वयंवरमें मैं जाऊँगा! आप कृपा करके मुझे हरिका रूप दे दें। हरिका एक अर्थ होता है बन्दर, भगवान्‌ने उन्हें बन्दरका रूप दे दिया। तब फिर बन्दर-रूपधारी नारदजी स्वयंवरमें गये और अपना मुँह आगे निकाल-निकालकर दिखाने लगे। नारदजी यह सोच रहे थे कि मेरा रूप ही सबसे सुन्दर है। शिवजीके दो गण उन्हें देख-देखकर हँस रहे थे। जब गणोंने कहा कि दर्पणमें अपना रूप तो देखें। उन्होंने अपना मुख पानीमें देखा। उनका बन्दरका मुख था। नारदजीने उन गणोंको शाप दे

दिया। उन्होंने सोचा कि ऐसे मुखवाले मेरे गलेमें राजकन्या माला कैसे डालेगी? क्रोधके वशीभूत होकर नारदजीने भगवान्‌को शाप दे दिया कि तुम्हें मृत्युलोकमें जाना पड़ेगा और स्त्रीके लिये भटकते फिरोगे। बन्दरोंसे ही तुम्हारी सहायता होगी। भगवान्‌ने उनका शाप स्वीकार कर लिया, किन्तु भक्तको बचाया। यह भगवान्‌का गुण है, भगवान्‌की दया है। लड़केके यदि फोड़ा हो जाता है तो माँ उसे चीर-फाड़कर साफ कर देती है, उसी प्रकार नारदके यह फोड़ा हो गया था, भगवान्‌ने उसे चीर-फाड़कर साफ कर दिया। फिर नारदको बड़ा पश्चात्ताप हुआ। वह भगवान्‌के पास गये और भगवान्‌से कहा कि हे भगवन्! मेरी बड़ी भारी गलती हुई, कृपया आप क्षमा करें। मैंने क्रोधके वशीभूत होकर शाप दे दिया था। विष्णुने कहा कि आपने कहा था कि मुझे हरिका रूप दे दो, मैंने तुम्हें हरिका रूप दे दिया। मुझे अवतार तो लेना ही था। रावणका वध करना था वह वानरोंकी सेनासे ही हो सकता था, मेरे मनमें जैसा आता है मैं वैसा ही करा लेता हूँ, तू शोक मत कर। भगवान् तो भक्तके दुःखको हटानेकी ही चेष्टा कर रहे हैं, वह भक्तके अपराधको अवगुण मानते ही नहीं, यदि हम भी ऐसी ही चेष्टा करें तो हमारी भी दया ही समझी जाय।

भगवान्‌में प्रेम तो सागररूपमें है। प्रेमकी तो वहाँ सीमा ही नहीं है। कोई थोड़ा भी प्रेम करता है तो भगवान् उसे अपने-आपको अर्पण कर देते हैं। यह भगवान्‌का प्रेम है।

कृष्णावतारमें ग्वालबाल जिनको शिष्टाचारका भी ज्ञान नहीं था, ऐसे लड़कोंसे भगवान् प्रेम कर रहे हैं।

बालकोंके लिये शिक्षा*

आज बालकोंके लिये सार-सार बातें कही जाती हैं। बालकोंको विद्याभ्यास कराना चाहिये। जो विद्या नहीं पढ़ेगा वह आगे जाकर रोवेगा, पश्चात्ताप करेगा। इसलिये बालकोंको विद्याभ्यास करना चाहिये। भाषा तथा लिपिका ज्ञान भी होना चाहिये। देवनागरी लिपि हिन्दी, संस्कृत आदि कई भाषाओंकी है। लिपिका तथा भाषाका जितना अधिक ज्ञान हो, उतना अभ्यास करना चाहिये। अनेक भाषाओंके ज्ञानकी आवश्यकता है। शिक्षाकी उससे भी ज्यादा आवश्यकता है। शिक्षाका मतलब है कर्तव्य एवं आचरणका ज्ञान होना। शिक्षाके उपदेशसे कर्तव्यका ज्ञान होता है। वर्तमानमें लड़के पढ़ते हैं, लिपिका ज्ञान भी होता है, किन्तु शिक्षाका ज्ञान नहीं होता। शिक्षा ही असली चीज है। केवल विद्या बहुत मूल्यवान् नहीं है। विद्याके साथमें शिक्षा-दीक्षा भी होनी चाहिये। आजकलकी शिक्षामें नास्तिकताका विष भरा पड़ा है। जिस प्रकार साँपके दाँत तोड़ दिये जायँ तथा विष निकाल दिया जाय, फिर चाहे उसको गलेमें ही डाल दो, कोई भय नहीं रहता। इसी प्रकार पहले खूब शिक्षा देनी चाहिये। हरेक माता-बहनोंको अपने बच्चोंको शिक्षा देनी चाहिये। शिक्षाकी बातें सुनकर अपने बच्चोंको शिक्षा देनी चाहिये।

माता-पिता आदि जितने भी घरमें बड़े हैं, उन सबकी सेवा करनी चाहिये। सेवाका अभ्यास बालकपनमें ही होता है, यह बात बालकोंके लिये उत्तम है। माता-पिता सबकी सेवा करनी चाहिये। सेवा निष्काम हो तो कल्याण हो जाय। जिस प्रकार

---

* प्रवचन—दिनांक २०-५-१९५३, दोपहर, स्वर्गाश्रम।

धर्मव्याधका कल्याण हो गया। माता-पिताकी सेवासे मूक चाण्डालका कल्याण हो गया। यह कथा पद्मपुराणमें आती है। सेवाभाव बड़ा ही उत्तम है। हमारे शास्त्रोंका कितना बड़ा उपदेश तैत्तिरीयोपनिषद्‌में है। जब आचार्य स्नातक करके भेजते हैं तब कहते हैं—देख! तू घर जाता है तो माता-पिताको भगवान्‌के समान समझना। वास्तवमें सबमें भगवान् हैं। सबकी सेवा ही नारायणकी सेवा है। माता-पिताके तो हम अंश हैं। उनके रज-वीर्यसे तो सारा शरीर भरा है। अपने शरीरके चमड़ेसे उनकी जूती बना दें, तब भी हम उनके ऋणसे मुक्त नहीं हो सकते। रामजी अपनी माता कौसल्याजीसे कहते हैं कि पिताजीने मुझे वनका राज्य दिया है। माता कहती है कि पिताजीकी आज्ञा वनमें जानेको है तो मेरी आज्ञा है कि तू वनमें मत जा। माताजी आपका कहना ठीक है। पिताजी कह चुके, उनकी आज्ञासे मैं विष खा सकता हूँ, सीताका परित्याग कर सकता हूँ, किन्तु इस आज्ञाका त्याग करनेकी मेरी सामर्थ्य नहीं है। बेटा! पिताकी आज्ञासे माताकी आज्ञा विशेष आदरणीय है। पिताके साथमें माताजीकी भी आज्ञा है, माता कौन? कैकेयी। उधर दोकी आज्ञा है, इधर एककी आज्ञा है। यदि माता कैकेयीकी आज्ञा है तो जा, वनमें देवता तेरी रक्षा करें। कहनेका अभिप्राय यह है कि मर्यादापुरुषोत्तम श्रीरामचन्द्रजीने साक्षात् परमात्मा होते हुए भी माता-पिताकी आज्ञाका किस प्रकार पालन किया। जन्म देनेवाली माँसे सौतेली माताकी आज्ञा सौगुनी बढ़कर होती है। उनकी आज्ञाका पालन पहले करना चाहिये। माता-पिताकी आज्ञाका पालन, सेवा, प्रातःकाल नमस्कार करना चाहिये। जिनके माता-पिता जीवित हैं, चाहे वे पचास वर्षके ही हों, वे उनके सामने तो बालक ही हैं। उनको चाहिये कि वे उनकी

सेवा, उनकी आज्ञाका पालन करें। जो माता-पिताकी सेवा करता है, उसके लिये ऐसी कोई भी बात नहीं है जो वह न कर सके।

अगली बात है ब्रह्मचर्यका पालन। जो छोटी अवस्थामें किसी प्रकार वीर्यको खो बैठेगा, उसे सदाके लिये रोना पड़ेगा। उसका कोई भी इलाज नहीं, उसके बहुत-सी बीमारियाँ हो जाती हैं। उसके फिर सन्तान नहीं होती, यदि होती है तो वह बहुत कमजोर होती है। इसपर विशेष ध्यान देना चाहिये। अठारह वर्षतक तो अवश्य ही ब्रह्मचर्यका पालन करना चाहिये। बादमें यथाशक्ति पालन करनेकी चेष्टा करनी चाहिये। पालन नहीं कर सके तो फिर विवाह कर लेना चाहिये। विवाहमें माता-पिता दहेज लें तो विवाह नहीं करना चाहिये। यह तो खड़ा करके बिक्री करना है। एक नम्बरमें तो लेना ही नहीं, दो नम्बरमें वह है जो दो सौ रुपयोंमें ही सारा काम चला लेता है। सारे विवाहमें हजारसे ज्यादाका खर्चा न हो। दस हजार देता हो तो एक हजार लेवे, यह भी दो नम्बर होते हुए भी एक नम्बरके ही समान है। इसके बाद तीसरा नम्बर है वह यह कि माँगकर नहीं ले, इस जमानेमें तो यह भी ठीक है। प्रशंसा इसलिये है कि माँग-माँगकर न लेवे।

बिन माँगे दूध बराबर माँग लिया सो पाणी।
खैंचातानी खून बराबर यह सन्तांकी वाणी॥

माँगकर कभी नहीं लेना चाहिये। अपनी इच्छासे जो कुछ भेज दे उसीमें ही सन्तुष्ट होना चाहिये। यहाँ त्यागके लिये नहीं कहा। जहाँ वृक्ष नहीं वहाँ एरण्ड भी वृक्ष ही माना जाता है। इस न्यायसे यह भी अच्छा है। बालकको कहना चाहिये कि मुझे खड़ा करके बिक्री हो रही है, मैं कुंवारा ही रहूँगा।

अगली बात है शौचाचार-सदाचार। शौचाचारका मतलब है

शुद्धतापूर्वक जीवन बिताना। जल-मृत्तिकादिसे शरीरकी, साबुन आदिसे कपड़ोंकी सफाई रखनी चाहिये। किसीका जूठा नहीं खाना चाहिये। यह तामसी भोजन है। भोजनमें जूठ न अपनी खिलानी चाहिये, न दूसरोंकी खानी चाहिये। एक साथ एक ही थालीमें भोजन करना भी खराब है।

उच्छिष्टमपि चामेध्यं भोजनं तामसप्रियम्॥

(गीता १७। १०)

जो उच्छिष्ट है तथा जो अपवित्र भी है वह भोजन तामस पुरुषको प्रिय होता है।

यह तामसी भोजन है और '**अधो गच्छन्ति तामसाः**' (गीता १४। १८) किसीको न जूठा देना चाहिये न जूठा लेना ही चाहिये। शौचाचारपर विशेष ध्यान देना चाहिये, यानी शुद्धता रखनी चाहिये, पवित्र भोजन करना चाहिये।

सदाचार यानी सबके साथ हँस-हँसकर व्यवहार करे। सबके साथ ऐसा व्यवहार करे कि सबको मुग्ध कर दे। शत्रुपर भी असर पड़े। ऐसा व्यवहार है सदाचार। प्रशंसा लायक व्यवहार होना चाहिये। स्त्री, माता, बहन सबसे आदरकी दृष्टिसे बातचीत करे। नौकरको भी आदरकी वाणी बोले। उसको हम आदरसे बोलेंगे तो वह भी हमको आदरसे बोलेगा। बंगालियोंकी तरह घरमें सफाई रखनी चाहिये। कोई घरमें आये तो खड़ा हो जाय, यह सब उत्तम आचरण है। कोई घरपर आ जाय तो उसको अपने व्यवहारसे मुग्ध कर दे। घरपर जामाता या बहनोईकी जिस प्रकार हम खातिर करते हैं, वैसी ही सबकी खातिर करे। कोई बीमार मिल जाय या कोई सेवा मिल जाय तो यह समझे कि बस भगवान् ही मिल गये। ऐसा समझकर सेवा करना ही असली कमाई है। अच्छे गुणोंको धारण करना चाहिये। दुर्गुण

जितने भी हैं यह सब कूड़ा है। इसको अच्छी प्रकार साफ कर दे। साफ करनेके लिये झाड़ू क्या है? श्वाससे भगवान्‌के नामका जप। वाणीके जपसे भी सफाई हो जाती है। प्रातः-सायं कम-से-कम एक घंटा या आधा घंटा जितना बन सके भजन करना चाहिये। बाकी हर समय शरीरसे काम तथा भीतरसे भजन होना चाहिये। वह गुप्त हो तो सारे पापोंका नाश हो जाता है। ऐसी स्थितिमें दुर्व्यसन तथा पाप तो बन ही नहीं सकते। चलते, उठते, खेलते हुए भी भगवान्‌के नामका जप करना चाहिये। भगवान्‌को याद करते-करते सोवे तो शीघ्र ही आत्माका सुधार हो जाता है। क्षमा, दया, शान्ति ये दैवी सम्पदाके लक्षण गीताके सोलहवें अध्यायके आरम्भमें लिखे हैं। इनको अमृतके समान समझकर घोलकर पी जाय। दुर्व्यसन-दुराचारोंका तो एकदम त्याग कर दे। तम्बाकू, बीड़ी, सिगरेट आदिका सेवन दुर्व्यसन है, इनमें अपनेको कभी भी न लगावे। तीन व्यसन रखने चाहिये। अन्न, जल जिनके बिना न जी सके। इन दोका व्यसन तो शरीरके लिये अत्यन्त आवश्यक है। सत्संग-स्वाध्यायका भी व्यसन रखना चाहिये। कपड़ोंमें पैसा कम खर्च करना चाहिये। चाहे कोई भी कपड़ा हो, सादा हो, साफ हो, मैला-कुचैला न हो तथा कम दामोंमें ही काम चल जाय। कम-से-कममें शरीर-निर्वाह हो जाय ऐसी चेष्टा रखनी चाहिये। साधारण भोजन करना चाहिये। मालपूआ, मेवा, मिठाई आदिसे पेट खराब होता है। इनसे सदा दूर रहना चाहिये। कई स्त्रियाँ लड़कोंको मेरे पासमें लाती हैं कि इसके यह बीमारी हो गयी तो मैं कहता हूँ कुछ दिया होगा। बालकको ये सब चीजें नहीं देनी चाहिये। पहले तो खूब खिलाती हैं फिर लड़का बीमार पड़ता है तो रोती हैं। हरेक माता, बहनोंको यह खयाल रखना चाहिये कि बालकको छोटी

अवस्थामें मालपूआ खिलाना विष खिलाना है। मेवा खिलानेकी इच्छा है तो दाख खिलाओ, इससे इतना नुकसान नहीं है। खोएकी मिठाई तो बच्चेके लिये बड़ी खतरनाक है। 'म' जिसमें आ गया जैसे मैदा, मेवा, मिठाई यह विष है। बालकोंको 'मै' से दूर रहना चाहिये तथा माँको प्रणाम करना चाहिये। 'म' से हटकर रहना चाहिये। खराब व्यसन, दुराचार, हिंसा, असत्य भाषण, चोरी, व्यभिचार, मारपीट ये सब पाप हैं, नरककी मूर्ति हैं, इनसे बचकर रहना चाहिये। छोटी उम्रसे ही ये बातें नहीं होनी चाहिये। फिर राजा-महाराजा तथा करोड़पति पीछे-पीछे फिरते हैं। इन बातोंको ध्यानमें रखें तो दुर्गुण-दुराचारोंका नाश हो सकता है। अन्दरके बुरे भाव दुर्गुण हैं। इनको तो निकाल देना चाहिये और नये ग्रहण नहीं करने चाहिये। आलस्य, निद्रा, प्रमाद इन सबको हटा देना चाहिये। किसी कामके लिये आलस्य करना पाप है, यह विषके समान है। भोग भी बुरी चीज है, उसका कोई दण्ड तो नहीं है, किन्तु भगवान्‌की प्राप्तिमें विघ्न है। इससे भी दूर रहना चाहिये। यह संक्षेपसे बालकोंके विषयकी बात बतायी। जो बालक हो, उचित समझे तो धारण करे, नहीं तो माता-पिता उन्हें समझायें।

धारण करनेयोग्य आवश्यक तीन बातें*

गंगास्नान करना चाहिये। सत्संगकी बातें सुनकर काममें लानी चाहिये। उनका अनुष्ठान करना चाहिये। केवल सुननेमात्रसे कल्याण नहीं होता। सुनकर काममें लावे तो कल्याण हो जाय।

यहाँ जितने दिन रहना हो, उतने ही दिनोंमें भगवान्‌की प्राप्तिकी विशेष चेष्टा करनी चाहिये। पहलेकी कसर भी निकाल ले। बहुत सुन लिया, अब कार्यरूपमें आना चाहिये। चार रुपयेवाली गीता-तत्त्वविवेचनी जिसमें ढाई हजारके करीब प्रश्नोत्तर हैं, वर्षोंतक मनन करके लिखी गयी है। उसे उत्तम समझे तो यह निश्चय कर ले कि एक श्लोक तो अर्थभावसहित नित्य देखेंगे। नित्य दो श्लोक मननपूर्वक पढ़ लें तो सालभरमें एक आवृत्ति हो जाय। एक श्लोकका पाठ करे तो दो सालमें आवृत्ति हो जाय। प्रतिवर्ष पारायण करना हो तो नित्य दो श्लोक अर्थभावसहित देखने चाहिये। दो श्लोक ज्यादा नहीं हैं। कहीं एक पन्नेमें, कहीं दोमें तथा कहीं तीन पन्नेमें हैं। नित्यकर्मकी जगह रखा जाय तो बहुत लाभ हो सकता है। वर्षोंतक अध्ययन करके जो चीज बनायी गयी है, वह आपको भी पान करने मिल जाय। संस्कृत न जाने तो भाषा ही पढ़ लेवे। सुननेसे भी काम हो सकता है। दो श्लोक पढ़नेवाली सार बात बतायी है। गीताके लाभसे बहुत आदमी वंचित रह जाते हैं इसलिये आपको यह बात बतायी है। उचित समझो तो नित्य दो श्लोकका नियम लेकर पाठ करो।

आपलोग जितनी माला फेरते हैं, जिनके यज्ञोपवीत है वे गायत्रीकी तथा जिनके यज्ञोपवीत नहीं है उनके लिये यह महामन्त्र है—

---

* प्रवचन—दिनांक २१-५-१९५३, प्रात:काल, वटवृक्ष, स्वर्गाश्रम।

हरे राम हरे राम राम राम हरे हरे।
हरे कृष्ण हरे कृष्ण कृष्ण कृष्ण हरे हरे॥

जो बिलकुल ही नहीं फेरते हैं, वे कृपा करके एक माला जरूर फेरें। यज्ञोपवीत लेकर जो गायत्रीकी माला नहीं फेरते उन्हें एक माला सुबह और एक माला सायंकाल जरूर फेरनी चाहिये। जो फेरते हैं वे एक माला और बढ़ा दें। हरे रामकी माला सभी स्त्री-पुरुष फेर सकते हैं। जो बिलकुल नहीं फेरते, वे कम-से-कम एक माला जपें। ज्यादा तो इच्छा हो उतनी फेरें। ज्यादाके लिये कोई रोक-टोक नहीं है। जो फेरते हों वे एक माला और बढ़ा लें। जैसे तीन फेरते हों वह चार, पाँच फेरते हों वह छः, चौदह फेरते हों वह पन्द्रह फेरें, एक मालाके लिये कोई बोझा नहीं है। बाकी समय बिना संख्याके राम-रामका जप करें। दो चीजें नियममें शामिल करनी चाहिये—गीता-तत्त्वविवेचनीका पाठ और हरे रामका जप। हर वक्त भगवान्‌को याद रखनेकी चेष्टा करे। जान करके भगवान्‌को कभी नहीं छोड़े। कोई आधार कायम रहा तो भगवान्‌की प्राप्तिमें कोई कठिनता नहीं है। जान-बूझकर नहीं भूले, ऐसे भूल जाय तो उपाय नहीं है। यह मान ले कि भगवान् सब जगह हैं। इस मान्यताको मन-बुद्धिमें निश्चय कर ले। यह मान्यता एकदम कल्याण करनेवाली है। भगवान् हैं या नहीं, जिसके यह शंका है वह अर्धनास्तिक है। जिसके बिलकुल ही विश्वास नहीं, वह पूरा नास्तिक है। यह आस्तिक भाव धारण करे कि भगवान् हैं।

नास्ति बुद्धिरयुक्तस्य न चायुक्तस्य भावना।
न चाभावयतः शान्तिरशान्तस्य कुतः सुखम्॥

(गीता २। ६६)

भगवान् गीतामें कहते हैं कि जो नास्तिक है उसमें बुद्धि नहीं होती। उसमें परमात्मविषयक श्रद्धा भी नहीं होती, जिसमें श्रद्धा

नहीं होती, उसको शान्ति नहीं मिलती। जहाँ शान्ति नहीं, वहाँ सुख कहाँ? शान्ति उसको ही है जो सात्त्विक है, जो भगवान्‌का चिन्तन करता है, भगवान्‌को मानता है। भगवान् हैं ऐसा निश्चय करके भावना करनी चाहिये। श्रद्धा करनी चाहिये, चिन्तन भी करना चाहिये। दो पूर्वोक्त नियमकी बातोंसे यह बहुत मूल्यवान् है। दो श्लोकके पाठ करनेसे मुक्ति हो जायगी यह गारंटी नहीं, एक माला बढ़ानेसे मुक्ति हो जायगी, कल्याण हो जायगा, यह गारंटी नहीं है, किन्तु तीसरी बातके लिये जोरसे गारंटी है, यदि कोई धारण कर लेवे कि परमात्मा हैं। बुद्धिमें निश्चय कर लेवे, जैसा परमात्माका स्वरूप है उसको मनसे याद रखनेकी चेष्टा करे, यथाशक्ति भूले नहीं, परमात्मामें श्रद्धा रखे। उनका चिन्तन करे, वाणीके द्वारा भगवान्‌के नामोंका जप करे। मनसे भगवान्‌के स्वरूपका ध्यान करे, उनका स्मरण रखे और यथाशक्ति निरन्तर याद रखनेकी चेष्टा करे।

कोई-सा भी साधन हो, किन्तु भगवान्‌के नामका जप और परमात्माके स्वरूपकी स्मृति अवश्य करे। वह चाहे वाणीसे हो या श्वाससे। चिन्तन तो मनसे ही होता है, बुद्धि और लगा दे। परमात्मा हैं इस प्रकार माननेमें न कौड़ी लगती है न छदाम। ऐसा दृढ़ निश्चय करे कि फिर कायम रहे। बुद्धिसे मान लेवे कि परमात्मा हैं। भक्ति-पूर्वक, आदरपूर्वक बुद्धिमें विश्वास हो जाय—इसीका नाम श्रद्धा है। इस प्रकार बुद्धिकी मान्यतानुसार मनसे भगवान्‌का स्मरण करना चाहिये, यानी भगवान्‌को याद रखना चाहिये। वाणीसे उनके नामका जप भी होना चाहिये। भगवान्‌की स्मृति हर वक्त बनी रहे, इसके लिये शक्ति-अनुसार प्राणपर्यन्त चेष्टा करनी चाहिये। मृत्युको स्वीकार कर ले, किन्तु इसको नहीं छोड़े। मरना तो है ही, फिर भगवान्‌के नामको लेते हुए यदि मृत्यु हो तो इससे बढ़कर और क्या है? बल्कि प्रार्थना करे कि मरते समय आपके नामका जप हो। चाहे आप दर्शन

न दें, किन्तु श्रद्धा-भक्तिपूर्वक आपके नामका जप और स्मृति बनी रहे। भगवान्‌से प्रार्थना करे, माँग करे। यह कामना होते हुए भी इतनी शुद्ध और पवित्र है कि इससे मुक्ति हो जाय। भोगोंकी तो कामना की नहीं। शरीर भी जानेवाला होवे तो आज ही चला जाय, किन्तु भगवान्‌को याद करते हुए ही जाय। चाहे गंगाके किनारे मृत्यु न होकर किसी नीचके घर मृत्यु हो जाय, किन्तु आपकी स्मृति सदा बनी रहे। भगवान्‌से भी प्रार्थना करे कि हे भगवन्! आप कृपा करके इसमें मदद करिये। तीसरी बात सबसे दामी है इसके समान कुछ नहीं है। यही सिद्धान्त है, यही साधन है, यही सब साधनोंका निचोड़ है। इस साधनको सिद्धान्त मानकर इसका पालन करे। फिर साधनमें कोई कमी भी रह जाय तो यह साधन स्वयं उसको सँभाल लेता है, किंतु इसमें कमी रह जाय तो फिर न तो कोई सहायक है और न साधन है। इस बातकी भगवान् गारंटी देते हैं—

अनन्यचेताः सततं यो मां स्मरति नित्यशः।
तस्याहं सुलभः पार्थ नित्ययुक्तस्य योगिनः॥

(गीता ८। १४)

हे अर्जुन! जो पुरुष मुझमें अनन्यचित्त होकर सदा ही निरन्तर मुझ पुरुषोत्तमको स्मरण करता है, उस नित्य-निरन्तर मुझमें युक्त हुए योगीके लिये मैं सुलभ हूँ, अर्थात् उसे सहज ही प्राप्त हो जाता हूँ।

अनन्यचित्तसे नित्य-निरन्तर स्मरण करे तो भगवान् सुलभतासे प्राप्त हो सकते हैं। अबसे अन्ततक अभ्यास करें तो हमारा कल्याण हो जाय।

अन्तकाले च मामेव स्मरन्मुक्त्वा कलेवरम्।
यः प्रयाति स मद्भावं याति नास्त्यत्र संशयः॥

(गीता ८। ५)

अन्तकालमें मेरा स्मरण करते हुए शरीर त्यागकर जाता है वह मुझे ही प्राप्त होता है। यह कानून है।

यं यं वापि स्मरन्भावं त्यजत्यन्ते कलेवरम्।
तं तमेवैति कौन्तेय सदा तद्भावभावितः॥

(गीता ८। ६)

हे कुन्तीपुत्र अर्जुन! यह मनुष्य अन्तकालमें जिस-जिस भी भावको स्मरण करता हुआ शरीरका त्याग करता है, उस-उसको ही प्राप्त होता है; क्योंकि वह सदा उसी भावसे भावित रहा है।

जो भगवान्‌के नामका जप करता हुआ मरता है वह परमात्माको ही प्राप्त होता है। जिसको याद करता हुआ जाता है वह उसीको ही प्राप्त होता है। जो देवताओंको याद करता हुआ जाता है वह देवताओंको प्राप्त होता है और जो भूत, प्रेत और पिशाचोंको याद करता हुआ जाता है, वह उन्हींको ही प्राप्त होता है और जो भगवान्‌को याद करता हुआ जाता है, वह भगवान्‌को ही प्राप्त होता है। यदि नित्यका अभ्यास होगा तो मृत्युके समय भी भगवान्‌की स्मृति हो जायगी। इसलिये भगवान् अर्जुनको बहुत जोर देकर कहते हैं—

तस्मात्सर्वेषु कालेषु मामनुस्मर युध्य च।

(गीता ८। ७)

इसलिये तू हरेक समयमें मेरा स्मरण कर और युद्ध भी कर। युद्धमें तो बड़ा ही जोर आता है। जब युद्ध भगवान्‌को याद रखते हुए हो सकता है तो हमसे और कार्य ऐसे क्यों नहीं हो सकते? इसलिये माता-बहिनों तथा भाइयोंको हर वक्त भगवान्‌को याद रखते हुए कार्य करते रहना चाहिये। भगवान्‌को याद रखते हुए कार्य करनेसे बुरा काम तो होगा ही नहीं, आगे-पीछेके सभी पाप स्वाहा हो जायँगे। इस बातको मानकर इसके लिये कटिबद्ध हो जाना चाहिये।

साधन और निष्ठाकी आवश्यकता*

आज आपको जो बात बतायी जाती है वह बहुत लाभकी है। यदि समझमें आ जाय तो बात ही क्या है। जो परमात्माकी प्राप्तिके मार्गमें चलता है, जो साधनावस्थामें है, उससे भूल होना स्वाभाविक ही है। मनुष्य अज्ञ है, अज्ञानतामें दोष आ ही जाता है। जितने भी सिद्धान्त हैं, मान्यताएँ हैं या मत-मतान्तर हैं, सभी भ्रममें भी डालनेवाले हैं और मुक्ति भी देनेवाले हैं। एक-से-एक अलग है, इस तरहसे तो ये भ्रममें डालनेवाले हैं और किसी एकको मानकर उसके अनुसार आचरण करे तो मुक्ति भी हो जाय। खयाल करना चाहिये, आपलोगोंको बड़े महत्त्वकी चीज बतायी जाती है, समझनेकी आवश्यकता है। हमारी जो भावना है यानी नीयत है, वह रुपयोंकी प्राप्तिकी नहीं होनी चाहिये; भगवान्‌की प्राप्तिकी नीयत होनी चाहिये, नीयत असली होनी चाहिये, फिर साधनमें कोई भूल हो जाती है तो भगवान् स्वयं माफ कर देते हैं। भगवान् अपने-आप सँभाल लेते हैं। हमें चिन्ता करनेकी आवश्यकता नहीं है, किन्तु हमारी नीयतमें दोष नहीं होना चाहिये। परमात्माको प्राप्त करना सच्ची नीयत है। फिर बीचमें मान, बड़ाई तथा शरीरके आरामको आदर देता है तो वह नीयतका दोष है। जहाँतक मान-बड़ाई प्राप्त हुई, वह साधन परमात्माकी प्राप्तिके लिये नहीं अपितु मान-प्रतिष्ठाके लिये है, क्योंकि जब मान-प्रतिष्ठा मिलती है तो फूल जाते हैं और भगवान्‌को भूल जाते हैं। यह भगवान्‌की प्राप्तिमें विघ्न है, ऐसा मानकर इसका तिरस्कार कर देना चाहिये। जो भगवान्‌की

---

* प्रवचन—दिनांक २२-५-१९५३, वटवृक्ष, स्वर्गाश्रम।

प्राप्तिमें बाधक है उसे लात मारकर निकाल देना चाहिये। परमात्माकी प्राप्तिके लिये यदि साधन होगा तो कंचन, कामिनी, मान, बड़ाईमें नहीं अटकेंगे। यदि हम साधनका आदर नहीं करते तो हमारी नीयत उच्चकोटिकी नहीं है। जो दम्भी-पाखण्डी होते हैं, वे भजन-ध्यानका ढोंग करके दूसरोंको मोहित कर लेते हैं और अपनी सेवा-पूजा करवाने लग जाते हैं। जो पूजा स्वीकार कराने लग जाता है, वह पूजाका दास हुआ न कि भगवान्का दास। जो स्त्रीके वशमें हो जाता है, वह स्त्रीका दास है, परमात्माका दास नहीं, ईश्वरका दास नहीं। यदि ईश्वरका दास होता तो इन सबको ठुकरा देता। हम बाहरमें बैठे हैं तो लोगोंको दिखानेके लिये खूब जोरोंसे ध्यान करते हैं। एकान्तमें होते हैं तो कभी माला हाथोंमेंसे गिरती है तो कभी नींद आती है, क्योंकि वहाँ कोई देखता तो है नहीं। वह तो दूसरोंको दिखानेके लिये ही करता है। वहाँ भगवान् नहीं आते, वहाँ तो वह ठगता है। ऐसी जगहसे भगवान् बहुत दूर रहते हैं। भीतरसे भगवान्को चाहे, देर होगी तो भीतरमें दुःख होगा। अभीतक भगवान् नहीं आये, क्या बात है? हे भगवन्! आप यदि नहीं आयेंगे तो हमारी क्या गति होगी, हम तो मारे जायँगे, आपके बिना हमारा कोई भी सहायक नहीं—यह भाव होना चाहिये।

हो गया सो हो गया ऐसा संतोष करनेसे भगवान् नहीं मिलते। हमारा समय यदि ठीक नहीं बीत रहा है तो इसे ठीक बितानेकी चेष्टा करनी चाहिये। जब दाँत टूट जायँगे, मुँहपर झुर्रियाँ पड़ जायँगी, चलना, उठना, बैठना मुश्किल हो जायगा, तब हमारा क्या सुधार होगा? क्या समय आपके हाथमें है? भरोसा नहीं कब मृत्यु हो जाय। कब इस संसार-सागरसे पार हो जायँ। मृत्यु आ जायगी तो क्या आप उसे कह सकेंगे कि आज नहीं कल

आ जाना। कहनेसे भी कौन सुनेगा? फिर तो शरीरके साथमें सब सम्पत्ति यहीं छूट जायगी। किसीके साथमें कुछ भी सम्बन्ध नहीं रहेगा। कुटुम्बके साथमें पाई भर भी सम्बन्ध नहीं रहेगा। शरीर भी साथमें नहीं जायगा। केवल प्राण, इन्द्रियाँ, मन, बुद्धि ये ही साथमें जायँगे। स्थूल शरीरको छोड़कर सूक्ष्म शरीरसे चले जाओगे। तुमको अपनी सारी उम्रमें वही धन प्राप्त करना चाहिये जिससे भगवान् खरीदे जायँ। यदि इस जीवनमें भगवान् नहीं मिलेंगे तो पूँजी तो रहेगी ही। अगले जन्ममें योगभ्रष्टके रूपमें जन्म हो जायगा, तब मुक्ति हो जायगी। अन्य किसी योनिमें तो भगवान्‌की प्राप्ति होना कठिन है। मनुष्ययोनि पुनः तभी मिलेगी जब योगभ्रष्ट हो जाओगे।

अयतिः श्रद्धयोपेतो योगाच्चलितमानसः।
अप्राप्य योगसंसिद्धिं कां गतिं कृष्ण गच्छति॥

(गीता ६। ३७)

भगवान्‌से अर्जुन पूछ रहे हैं कि जो यत्नशील है, जिसमें श्रद्धा है, ऐसा योगसे चलित हुए मनवाला योगसंसिद्धिको न पाकर कौन-सी गतिको जाता है? भगवान् कहते हैं—

न हि कल्याणकृत्कश्चिद्दुर्गतिं तात गच्छति॥

(गीता ६। ४०)

अच्छे कर्मोंको करनेवालेकी कभी दुर्गति नहीं होती। वह यहाँसे मरकर स्वर्गमें न जाकर योगियोंके घरोंमें जन्म लेता है। यह भी कोई आसान चीज नहीं, लाखोंमें कोई एक-दो ही ऐसे होते हैं। योगी महात्मा पुरुषोंको कहते हैं। उनके यहाँ जन्म लेकर वह भी उनके जैसा ही आचरण करने लग जाता है, फिर उसे भगवान्‌की प्राप्ति हो जाती है। जिसके बलसे योगियोंके कुलमें जन्म होता है, असली धन वही है। वह अच्छी नीयतसे किया

हुआ साधन है। इस जन्ममें मन-बुद्धिको शुद्ध बनाकर जायँगे तो दूसरे जन्ममें भगवान्‌की प्राप्ति हो जायगी। इसी जन्ममें पन्द्रह आने लाभ हो जायगा तो आगे फिर जन्म नहीं लेना पड़ेगा। इन्द्रियोंको पवित्र करना चाहिये। नेत्रोंकी पवित्रता क्या है? माता-बहनोंको अच्छी दृष्टिसे देखे। अपनेसे बड़ी हो तो उसे माता, बराबरवाली हो तो बहन समझे। सबमें ईश्वरको देखें तो हमारे नेत्रोंकी विशेष पवित्रता है।

बहूनां जन्मनामन्ते ज्ञानवान्मां प्रपद्यते।
वासुदेवः सर्वमिति स महात्मा सुदुर्लभः॥

(गीता ७। १९)

बहुत-से जन्मोंके अन्तमें ज्ञानवान् पुरुष मुझे प्राप्त होता है, सब कुछ वासुदेव है ऐसा माननेवाला महात्मा बड़ा ही दुर्लभ है।

बहुत-से जन्म तो हमारे हो चुके। अब इसी जन्ममें यदि हम भगवान्‌की प्राप्ति कर लें तो यही हमारा अन्तिम जन्म हो जाय। सबमें भगवद्‌बुद्धि हो जाय। सबको भगवान् समझकर सेवा करें तो हाथ पवित्र हो जायँ। भगवान्‌के गुण, प्रभाव एवं प्रेमकी बातोंको सुननेसे कान पवित्र होते हैं। मिथ्या बातें सुननेसे तो कान दूषित होते हैं। दोषोंको इकट्ठा करके ले जायँगे तो टेपरिकार्डकी तरह खिंचे जायँगे। '**वासुदेवः सर्वमिति**' ऐसा उच्चभाव रखना चाहिये। वाणीसे किसीको भी गाली नहीं देनी चाहिये। किसीको गाली देनेसे, निन्दा करनेसे, मिथ्याभाषणसे वाणी दूषित होती है। ये संस्कार मरनेके साथ जायँगे। वाणीके द्वारा भगवान्‌के नाम-गुणोंका स्वाध्याय हो तो वाणी परम पवित्र हो जाय। तब तो हमारा इसी जन्ममें कल्याण हो जाय। ये इन्द्रियाँ यदि यहाँ ही शुद्ध हो जायँ तो यहीं प्राप्ति हो सकती है, अन्यथा अगले जन्ममें भगवान्‌की प्राप्ति हो ही जायगी। यदि हमने वाणीमें कूड़ा-

करकट भर लिया तो नरकोंमें ही गिरना पड़ेगा। ऐसी तामसी योनियाँ मिलेंगी जहाँ परमात्माकी प्राप्ति हो ही नहीं सकती। हमको इतनी तेजीसे चेष्टा करनी चाहिये कि हमें भगवान्‌की प्राप्ति हो जाय। हमारे पास जितनी भी शक्तियाँ हैं उन सबको परमात्माकी प्राप्तिमें लगा देना चाहिये, नहीं तो घोर पश्चात्ताप करना पड़ेगा।

सो परत्र दुख पावइ सिर धुनि धुनि पछिताइ।
कालहि कर्महि ईस्वरहि मिथ्या दोस लगाइ॥

इन सब बातोंको सोचकर हमें इसको नहीं छोड़ना चाहिये। जब हितकी बात है, हितकी ही नहीं परम हितकी है तो इसे नहीं छोड़ना चाहिये। इससे बढ़कर और कोई हित नहीं है। आप भटकते फिरते हैं। आपको पूर्णानन्दकी प्राप्ति नहीं हुई, तभी भटकते हैं। जब मनुष्य उस आनन्दसे अघा जाता है तो उसे कोई भी चीज अच्छी नहीं लगती। जब उस आनन्दसे भर जाता है तब उसे किसी भी चीजकी आवश्यकता नहीं रहती। उस आनन्दकी प्राप्तिके बाद शरीरको चाहे काट दो, जला दो, आनन्दकी स्थिति वैसी ही बनी रहेगी—यह परीक्षा है।

यं लब्ध्वा चापरं लाभं मन्यते नाधिकं ततः।
यस्मिन् स्थितो न दुःखेन गुरुणापि विचाल्यते॥

(गीता ६। २२)

जिसको पाकर उससे बढ़कर और कुछ नहीं समझता। जिस परमात्माके स्वरूपमें स्थित होकर भारी-से-भारी दुःखसे भी चलायमान नहीं होता है। हमारे पास मनुष्यशरीर है तो इस चीजको अवश्य प्राप्त करना चाहिये। यह बहुत शीघ्र एवं सुगमतासे हो सकता है। हमने अवहेलना कर रखी है, इसलिये वंचित रह जाते हैं। '**कर्तुं सुसुखम्**' करनेमें बड़ा ही सुगम है।

जल्दी ही धर्मात्मा बन जाता है। चाहे घोर पापी भी क्यों न हो। भगवान् कहते हैं—

तेषामहं समुद्धर्ता मृत्युसंसारसागरात्।
भवामि नचिरात्पार्थ मय्यावेशितचेतसाम्॥

(गीता १२। ७)

जिन्होंने मेरेमें चित्त लगा दिया है। उन्हें मैं इस संसार-सागरसे शीघ्र ही पार कर देता हूँ। विलम्बका काम नहीं है।

योगयुक्तो मुनिर्ब्रह्म नचिरेणाधिगच्छति॥

(गीता ५। ६)

भगवत्स्वरूपको मनन करनेवाला कर्मयोगी परब्रह्म परमात्माको शीघ्र ही प्राप्त हो जाता है।

श्रद्धावाँल्लभते ज्ञानं तत्परः संयतेन्द्रियः।
ज्ञानं लब्ध्वा परां शान्तिमचिरेणाधिगच्छति॥

(गीता ४। ३९)

जितेन्द्रिय, साधनपरायण और श्रद्धावान् मनुष्य ज्ञानको प्राप्त होता है तथा ज्ञानको प्राप्त होकर वह बिना विलम्बके—तत्काल ही भगवत्प्राप्तिरूप परम शान्तिको प्राप्त हो जाता है।

भगवान्ने जगह-जगह जल्दी ही प्राप्ति बतायी है, देरीका काम नहीं है। आप कहते हैं कि हमें तो साधन करते हुए बहुत-से वर्ष हो गये, हमें तो अभीतक किसी भी चीजकी प्राप्ति नहीं हुई। आप झूठ भले ही कहें, वास्तवमें आपने साधन तो किया ही नहीं, साधन तो कीमती होना चाहिये। आप कीमती चीज चाहते हैं, उसकी प्राप्ति कठिन मानते हैं, जबकि भगवान् कहते हैं—'**कर्तुं सुसुखम्**' अर्थात् सुखपूर्वक प्राप्त हो सकते हैं। भगवान् कहते हैं फल भी प्रत्यक्ष है। आज काम दूसरे जन्ममें उसका फल यह बात नहीं है।

राजविद्या राजगुह्यं पवित्रमिदमुत्तमम्।
प्रत्यक्षावगमं धर्म्यं सुसुखं कर्तुमव्ययम्॥

(गीता ९।२)

यह विद्या सब विद्याओंकी राजा है। गोपनीयोंमें भी राजा है। परम पवित्र है और इसका प्रत्यक्षमें ही फल होता है, करनेमें भी बहुत सुगम है।

भगवान् कहते हैं तू मेरा अतिशय प्यारा है, इसलिये कहता हूँ। नहीं तो क्या पड़ी थी। कैसा भी पापी हो, जिस प्रकार साबुन मैलेसे मैले कपड़ेको साफ कर देता है, उसी प्रकार ज्ञानमें भी इतनी शक्ति है कि वह पापियोंको पवित्र कर डालता है। फल भी प्रत्यक्ष होता है। जिस प्रकार भोजनसे क्षुधा-निवृत्ति होती है, जलसे प्यासे आदमीकी प्यास निवृत्त होती है। यह तो एक बार होती है, फिर वापस आवश्यकता हो जाती है, किन्तु यह अविनाशी है। इसके लिये परिश्रम भी नहीं करना पड़ता। हम इसे कठिन मानते हैं, यह मूर्खता है। हमें भगवान्के वचनोंपर विश्वास करके इसमें लग जाना चाहिये। यह विश्वास कर लेना चाहिये कि या तो भगवान्को प्राप्त करेंगे, अन्यथा प्राण छोड़कर मर मिटेंगे।

प्रेमी भक्तकी स्थिति

ये यथा मां प्रपद्यन्ते तांस्तथैव भजाम्यहम्।
मम वर्त्मानुवर्तन्ते मनुष्याः पार्थ सर्वशः॥

(गीता ४। ११)

जो मुझको जिस प्रकार भजता है मैं भी उसे उसी प्रकार भजता हूँ। यह भगवान्‌की प्रतिज्ञा है, शास्त्रोंमें जगह-जगह प्रमाण भी है। भगवान् प्रेमके तत्त्वको जैसा जानते हैं, वैसा कोई भी नहीं जानता। भगवान्‌से प्रेम करना चाहिये। भगवान् सत्य हैं, संसार असत्य है। एक आदमी रुपया चाहता है, उसकी प्राप्तिमें प्रारब्ध प्रधान है। चेष्टा करनेसे मिल भी सकता है और नहीं भी मिल सकता है। भगवान् तो अवश्य मिलेंगे। पुरुष अर्थका दास है, किन्तु अर्थ तो किसीका दास नहीं, जड़ है। उसमें अन्तःकरण नहीं, इसलिये उसमें कोई इच्छा भी नहीं होती। जो रुपया चाहता है उसके पासमें रुपया उछलकर नहीं आता। भगवान् तो नित्य हैं। रुपयोंका तो मिलनेके बाद वियोग भी हो जाता है, किन्तु जब हम भगवान्‌का संयोग चाहते हैं तो भगवान्‌की भी सामर्थ्य नहीं कि हमारेसे वियोग कर लें।

यो मां पश्यति सर्वत्र सर्वं च मयि पश्यति।
तस्याहं न प्रणश्यामि स च मे न प्रणश्यति॥

(गीता ६। ३०)

जो पुरुष सम्पूर्ण भूतोंमें सबके आत्मरूप मुझ वासुदेवको ही व्यापक देखता है और सम्पूर्ण भूतोंको मुझ वासुदेवके अन्तर्गत देखता है, उसके लिये मैं अदृश्य नहीं होता और वह मेरे लिये अदृश्य नहीं होता।

भगवान् कहते हैं—जो मुझे देखता है उसको मैं भी देखता ही रहता हूँ। इस प्रकारके भगवान्‌के रहते हुए हम रुपयोंको भजते हैं,

यह हमारी मूर्खता नहीं तो और क्या है ? भगवान्‌से मिलनेकी इच्छा ऐसी होनी चाहिये जैसे जलके बिना मछली, तब भगवान् तुरन्त आ जाते हैं। भरतजीकी जब यह दशा हो गयी तो भगवान् पहुँच गये। गोपियोंकी मरनेकी तैयारी हो गयी तो भगवान् पहुँच गये। रुक्मिणीजी व्याकुल हो गयीं तो भगवान् पहुँच गये। दो दशामें भगवान् मिलते हैं—आनन्दकी दशामें या व्याकुलताकी दशामें। आनन्दका उदाहरण सुतीक्ष्णजीका है। जब उनको विश्वास हो गया कि भगवान् आयेंगे तो वह मुग्ध हो गये, मग्न हो गये। मिलनेके लिये घरसे निकल पड़े। उनको मार्गका ज्ञान नहीं रहा, दिशा-विदिशाका भी ज्ञान नहीं रहा। प्रेम इतना बढ़ गया कि रोमांच होने लगा, वह वहीं बैठ गये, इतने आनन्दमें मस्त हो गये कि फिर कहीं जा नहीं सके। भगवान् आये और भगवान्‌ने उन्हें जगाया। हे मेरे प्राण प्यारे, उठो। तब भी नहीं उठे। ध्यानके रूपको भगवान्‌ने खींच लिया, तब व्याकुल होकर उठे तो देखा जिसका ध्यान कर रहे हैं वे तो सामने ही खड़े हैं। ऐसा प्रेममें मुग्ध हो जाय तो यह उच्चकोटिका साधन है। या तो विरहमें व्याकुल हो जाय या प्रेममें मग्न हो जाय। सुतीक्ष्णजी प्रेममें मग्न थे। भरतजी व्याकुलतामें मग्न थे। सुतीक्ष्णजी प्रेमरसका अनुभव कर रहे थे, भरतजी विरहकी व्याकुलतामें थे। भगवान्‌के मिलनेकी तीव्र लालसा होनी चाहिये या भगवान्‌के ध्यानमें मस्त होना चाहिये। मछलीका जो उदाहरण दिया वह बहुत अच्छा है। इसी प्रकार पपीहाका भी उदाहरण है। बादलोंको देखकर वह 'पिउ-पिउ' करता है। ओलोंकी, पानीकी चपेट सहता है, पंख भी टूट जाते हैं, तब भी वह बादलोंकी तरफ देखता ही रहता है। इसी प्रकार भगवान्‌की प्राप्तिमें कोई सांसारिक दुःख आ जाय तो घबराना नहीं चाहिये। अपना जप पपीहेसे भी बढ़कर रखना चाहिये। पपीहा मर भी जाता है, क्योंकि पानीमें या बादलोंमें कोई दया तो है नहीं। पपीहा चाहे मर जाय,

किन्तु बादलोंको या ओलोंको उसकी कोई परवाह नहीं। जबकि भगवान् निर्दयी नहीं अपितु दयासागर हैं। जिस प्रकार पपीहा बादलोंको देखते ही पिउ-पिउ करता है और मग्न हो जाता है, उसी प्रकार हमें भी भगवान्के लिये मुग्ध हो जाना चाहिये। बादल तो जलकी तथा महात्मालोग भगवान्के तत्त्व, रहस्य, लीला, ज्ञान, वैराग्य आदिकी वर्षा करते हैं। भक्त भगवान्के प्रेमकी बातोंको सुनकर मुग्ध हो जाते हैं, सब ओरसे बेपरवाह हो जाते हैं, किन्तु इसको नहीं छोड़ सकते। पतंगका दीपकसे इतना प्रेम होता है कि वह जलकर मर ही जाता है, अपना अस्तित्व मिटा देता है। इसी प्रकार अपना अस्तित्व सर्वथा मिटा देना चाहिये। परमात्मा चेतन हैं, दीपक जड़ है। जो भगवान्के लिये अस्तित्व मिटाने लग जाता है, उसे वे अपनेमें ही मिला लेते हैं। सायुज्य मुक्तिवालेकी आत्मा परमात्मामें विलीन हो जाती है। चेतन परमात्मा उसे अपने विज्ञानानन्दस्वरूपमें शामिल कर लेते हैं और परमात्माका ध्यान किस प्रकार करना चाहिये? इसका एक उदाहरण है। जिस प्रकार चकोर पक्षी पूर्णिमाके चन्द्रमाकी तरफ अपनी दृष्टि लगा देता है, अमृत-पान करता रहता है, जबतक चन्द्रमा नहीं छिपता, तबतक वह देखता ही रहता है। उसकी गर्दन चाहे टूटकर ही गिर जाय, चाहे गलेमें दर्द हो, वह देखता ही रहता है, इसी प्रकार भगवान्में यह विशेषता है कि हम भगवान्को देखते हैं तो भगवान् भी हमें देखते ही रहते हैं। चन्द्रमा समयपर छिप जाता है, किन्तु भगवान् कहते हैं मैं तो दीखता ही रहता हूँ।

तस्याहं न प्रणश्यामि स च मे न प्रणश्यति॥

(गीता ६। ३०)

यह बात भगवान्में ही है और किसीमें नहीं। भगवान्के समान प्रेम-तत्त्वको जाननेवाला और कोई नहीं है। ऐसे परमात्माको छोड़कर जो संसारका चिन्तन करता है, उसके समान मूर्ख और कौन होगा?

भगवान्‌की भक्ति सकाम भी खराब नहीं है। देवी-देवताओंकी सकाम भक्ति अच्छी नहीं है। सकाम अनुष्ठानकी विशेष आवश्यकता नहीं है। जो करते हैं उनको मना भी नहीं करना चाहिये, क्योंकि न करनेवालोंसे तो अच्छे ही हैं। अपने कल्याणके लिये प्रेम तथा वैराग्य ही सबसे बढ़कर है। अपने यहाँ जो चल रहा है यह सत्संग बीचकी श्रेणीका है। उच्चकोटिका सत्संग तो आजकल देखनेमें नहीं आता। भगवान्‌की कृपा है जो इतना मिल तो जाता है। उच्चकोटिके उस सत्संगकी तो श्रीतुलसीदासजीने बड़ी महिमा गायी है—

तात स्वर्ग अपबर्ग सुख धरिअ तुला एक अंग।
तूल न ताहि सकल मिलि जो सुख लव सतसंग॥

हे तात! स्वर्ग-अपवर्गका सुख एक तरफ और एक क्षणमात्रका सत्संग एक तरफ हो तो भी सत्संग बढ़कर है। सत् माने परमात्मा, परमात्माका संग ही असली सत्संग है। परमात्मामें प्रेम, परमात्माका संयोग, परमात्माके दर्शन—यह असली सत्संग है। भगवान्‌के दर्शन हो गये तो मुक्ति हाथमें ही है। परमात्मामें प्रेम हो गया तो सब कुछ हो गया। भगवान्‌में प्रेम एक नम्बरकी चीज है। दूसरे नम्बरका सत्संग यह है कि जो जीवन्मुक्त साधु महात्मा हैं उनका संग। उनके भी दो भेद हैं—एक तो अधिकारी पुरुष हैं, जो मुक्त तो थे ही, भगवान्‌की आज्ञासे संसारके उद्धारके लिये आते हैं। वे पुरुष बड़े विरक्त होते हैं, उनकी कोई बड़ाई कर दे तो वे उसे अच्छा नहीं समझते। कोई मान-बड़ाई करते हैं तो उसका तिरस्कार कर देते हैं। दूसरे वे हैं जिन्होंने साधन करके परमात्माकी प्राप्ति कर ली।

प्रभुका सौन्दर्य*

प्रश्न—परमात्मामें ऐसी कौन-सी बात है, जिससे उनके मिलनेके बाद हम उन्हें छोड़ नहीं सकते।

उत्तर—मैं परमात्मासे भिन्न नहीं हूँ। '**अहं ब्रह्मास्मि**' ऐसा होनेपर फिर भगवान्‌को कभी छोड़ ही नहीं सकता। पहले कल्पना करता है, फिर परमात्मामें एकीभाव हो जाता है। वे सायुज्य मुक्तिको प्राप्त करते हैं। प्रेम, प्रेमास्पद और प्रेमी तीनोंकी एकता हो जाती है। भगवान् कहते हैं—वह मुझे नहीं छोड़ सकता, मैं उन्हें नहीं छोड़ सकता।

तस्याहं न प्रणश्यामि स च मे न प्रणश्यति॥

(गीता ६। ३०)

वह मेरी दृष्टिसे ओझल नहीं होता। वह मुझे देखता रहता है और मैं उसे देखता रहता हूँ। भक्तकी चेष्टा भगवान्‌के आनन्दके लिये होती है और भगवान्‌की चेष्टा भक्तके आनन्दके लिये होती है। भगवान् भक्तको आह्लादित करते हैं और भक्त भगवान्‌को आह्लादित करता रहता है। जो अपनेको ब्रह्मसे भिन्न मानता है, वह भी प्रभुको नहीं छोड़ सकता। खयाल करो वास्तवमें इस प्रश्नका उत्तर या तो भगवत्प्राप्त पुरुष ही दे सकते हैं या जो '**अहं ब्रह्मास्मि**' इस भावसे एकीभावको प्राप्त हो गये हैं, वे ही दे सकते हैं। मैं जो उत्तर देता हूँ वह तो प्रेमके लिये या उसकी संतुष्टिके लिये ही होता है। मैं यह नहीं कहता कि मुझे भगवान् मिल गये और मैं जो कहता हूँ वह ठीक ही कहता हूँ। कहा जाता है, किन्तु कहाँतक ठीक है यह तो आप ही

---

* प्रवचन—दिनांक १३-५-५२, टीबड़ी, स्वर्गाश्रम।

विचारें। जितना ठीक लगे उतना अपनायें, जो ठीक मालूम न दे तो उसे छोड़ देना चाहिये। रामचन्द्रजी मर्यादापुरुषोत्तम होते हुए भी कहते हैं—मैं न अनीतिकी, न प्रभुताकी ही बात कहूँगा। तुम सुनो, सुनकर जो उचित लगे उसे अपनाओ। भगवान्‌के लिये भी इतनी गुंजाइश है तो हमारे लिये तो इससे ज्यादा होनी ही चाहिये। सुननेवालेको जितनी अच्छी लगे उतनी ग्रहण करे, जो न जँचे उसका उपाय ही क्या है।

दो बातें बड़ी ही खराब हैं स्त्रीके लिये पुरुष एवं पुरुषके लिये स्त्री। स्त्रियोंको देखकर इन्द्रादि देवता भी मोहित हो जाते हैं। उनका चित्र मनमें बस जाता है, वह हृदयमें प्रविष्ट हो जाता है। कहाँ तो मल, मूत्र, मांस, मज्जा, हड्डी, चमड़ेमें प्रेम, कहाँ वह भगवान्‌का दिव्य स्वरूप। वह हृदयमें प्रविष्ट हो जाय, तब तो कहना ही क्या है? यह तुलना हम कहाँतक देवें। वह तो भगवान्‌के स्वरूपके आगे कुछ भी नहीं। उनमें लाखों-करोड़ों गुणा अधिक आकर्षण है। स्त्रीको सुन्दर कहना तो मूर्खता है। यह तो स्त्रीकी सुन्दरता है, यदि सौन्दर्य-केन्द्र भगवान्‌की तरफ खयाल करें तो कोटि कामदेवकी सुन्दरता भी उनके मुकाबलेमें नहीं हो सकती। भगवान्‌का स्वरूप नित्य चिन्मय है। प्रकृतिके पदार्थ तो जड़ हैं। जड़में सौन्दर्य माना जाय, यह तो ठीक उसी प्रकार है जैसे आकाशके एक अंशका प्रतिबिम्ब। महत्तत्त्व यानी ईश्वरकी समष्टि बुद्धि जिससे यह सारा संसार परिपूर्ण है, उनकी सुन्दरताके एक अंशके प्रतिबिम्बका ही संसारमें विभाग है, असंख्य जीवोंमें व्यापक है। सागरके एक बुदबुदेका भी प्रतिबिम्ब हो, ऐसा सारे संसारमें है। वह प्रतिबिम्ब जब बुदबुदेका ही है, तब फिर विचार करिये कि वह सौन्दर्यके सागरकी बूँदका मुकाबला कर ही कैसे सकता है। सारे संसारमें जो सौन्दर्य है

वह सारा मिलकर असली सौन्दर्य-केन्द्र भगवान्‌के एक अंशका प्रतिबिम्बमात्र ही होगा। उसके अंशका प्रतिबिम्ब सारा ब्रह्माण्ड है। स्त्री उसका कितना अंश है उसीमें ही मोहित हो जाते हैं तो भगवान्‌को देखकर तो छोड़ ही कैसे सकते हैं। भगवान्‌की सुन्दरता देवलोककी अप्सराओंसे क्या पता कितनी दिव्य है। हमारेमें पृथ्वीका अंश है, देवलोकोंमें तेजस तत्त्वका अंश है। हमारी अपेक्षा क्या पता कितना भेद है। उत्तरोत्तर बढ़ते जायँ तो इन्द्रादिमें कितना सौन्दर्य है? उससे भी ज्यादा कामदेवमें सुन्दरता है। कोटि कामदेव भी इकट्ठे हों तो प्रभुकी सुन्दरताके एक अंशका भी मुकाबला नहीं हो सकता, क्योंकि वह तो परमात्माके एक अंशका आभासमात्र है। भगवान्‌को देखनेके बाद पलकें भी नहीं पड़ सकतीं, यह मेरी धारणा है। भागवतमें भी यह बात है, गोपियोंने ब्रह्माजीको कोसा है कि पलकें क्यों बना दी। उन्हें पलकोंके पड़नेका विघ्न सहन नहीं था। मेरी समझमें तो पलकोंका गिरना ही कमजोरी है, होश भी नहीं रहता। ऐसा अद्‌भुत दृश्य होता है जिसे वाणीसे नहीं कहा जा सकता है। शरीर चेष्टारहित हो जाता है। प्रसन्नतामें रोमांच होने लग जाता है। कण्ठोंका अवरोध हो जाता है, नेत्रोंमें चेतनता एवं अद्‌भुत प्रकाश आ जाता है, बड़ा ही प्रभाव पड़ता है। वह भगवान्‌से दूर कैसे रह सकता है, सदा भगवान्‌को ही देखता रहता है। भगवान् जब अन्तर्धान हो जाते हैं, तब भी छोड़ना नहीं हो सकता। दीखते ही रहते हैं, वह भुलाये नहीं जा सकते। किस प्रकार बताया जाय। जैसे पूर्णिमाके चन्द्रमाको चकोर देखता रहता है, अमृतका पान करता रहता है। जब चन्द्रमा अन्तर्धान हो जाते हैं तब भी वह तो चन्द्रमाको देखता ही रहता है, जब छिप जाता है तो निराश हो जाता है। जैसे चकोर अमृतका पान करता है

उसी प्रकार भक्त भगवान्‌के मुखारविन्दसे पान करता रहता है। उसके बराबरका कोई उदाहरण नहीं है। यदि स्तुति करें, कोई उदाहरण दें तो स्तुतिमें ही निन्दा है। किसीके पास पारस है उसे हम लखपति, करोड़पति कहें तो वह हँसता है, कहता है कि पता नहीं मैं एक मिनटमें कितने करोड़पति बना सकता हूँ। जैसे एक गरीब स्त्री कहती है कि सोनेका कड़ा ही क्या, यह तो गुड़का भी पहन सकता है, उसकी दृष्टिमें तो गुड़ ही सबसे बड़ा है। यह प्रशंसामें निन्दा है। हम कितनी ही स्तुति करें सब निन्दा ही है, किन्तु भगवान् प्रसन्न अवश्य होते हैं। भगवान् कहते हैं कि यह कैसे कहता है। अन्तःकरणमें जो भाव है, उसकी मन कल्पनातक नहीं कर सकता। मन यदि कल्पना भी कर ले, यानी मन जितनी कल्पना करता है वाणी उतना व्यक्त नहीं कर सकती। भागवत आदि भक्तिके ग्रन्थोंमें जो बात बतायी तथा गायी गयी है, उसके सौन्दर्यकी सीमा समुद्रमें बूँदके भी सदृश नहीं है। जहाँ सूर्य नहीं है, वहाँ सूर्य इतना बड़ा होता है, कैसे समझाया जाय। जितनी महिमा बतायी जाय उतनी ही थोड़ी है। बतानेका तरीका ही नहीं है। इसी प्रकार ही भगवान्‌के सौन्दर्यके विषयमें कहना नहीं बन सकता। भगवान् संसारमें तो प्रकृतिकी खोली चढ़ाकर आते हैं, उनमें छिपा हुआ शरीर ही असली शरीर है। वे भगवान् ऊपरसे मायाका पर्दा डालकर रहते हैं। उनके उस रूपमें भी जो मोहित हो जाते हैं, उस भक्तके सामने वह परदा भगवान् हटा देते हैं। उनका जो दिव्य शरीर है, वह बड़ा ही अलौकिक है। व्यवधान तो परदा है, उसमेंसे भी वह रूप जोरोंसे चमकता है, चमक, दमक, रूप, लावण्यता चन्द्रमाके आगे महीन दुपट्टेके समान है। वह महीन दुपट्टेमें जिस प्रकार चमकता रहता है। परदा सूर्यके आगे भी कर दें तो प्रकाश छनकर आ जाता

है, रुक तो सकता ही नहीं। भगवान् मूढ़ोंके लिये मायाका परदा डालकर आते हैं।

नाहं प्रकाशः सर्वस्य योगमायासमावृतः।
मूढोऽयं नाभिजानाति लोको मामजमव्ययम्॥

(गीता ७। २५)

मैं अज हूँ, अविनाशी हूँ। मूढ़ोंका समूह मुझे नहीं जानता। योगमायासे ढके रहनेके कारण उन्हें मैं नहीं दीखता।

जिस प्रकार सूर्यसे उत्पन्न बादल सूर्यको ढक लेता है, किन्तु प्रकाश तो छाया ही रहता है दिनकी रात नहीं होती। सूर्य नहीं दीखता यह बात नहीं है। इसी प्रकार परमात्मा मायासे आच्छादित रहते हैं। जब पर्दा दूर कर देते हैं तब तो बात ही क्या है। सूर्यका प्रकाश जड़ है, परमात्माका प्रकाश चेतन है। सूर्यके प्रकाशमें कोई चीज आ जाय तो उसकी छाया पड़ती है। सूर्यकी ताकत नहीं कि वह किसीको बाद देकर सामने आ जाय, किन्तु परमात्माका प्रकाश हर जगह है, उनके प्रकाशको कोई रोक नहीं सकता।

बिजलीके प्रभावसे एक्सरे मशीनके द्वारा मांस बाद देकर सिर्फ हड्डी दीखती है, उसी प्रकार सारे व्यवधानोंके स्थानपर पुरुष है तथा भगवान्‌का सगुणरूप है बिजली। भगवान्‌का सगुणरूप प्रत्यक्षकी तरह रहता है। भगवान् अपनी इच्छासे अपने प्रकाशको बुझा सकते हैं। मायाका परदा मूढ़ोंके लिये है, किन्तु रहस्यको जाननेवाले विशुद्ध प्रेमीके आगे मायाका पर्दा ठहर ही नहीं सकता। वह मायाका परदा बाद हो जाता है। बिजलीकी रोशनीसे सभी परदे हट जाते हैं, यह बात भगवान्‌के प्रभावकी है। भगवान्‌के प्रभावसे तो इन्द्रादि देवता तथा ब्रह्मा भी मोहित हो गये। मोहिनीरूप धारण कर असुरोंको मोहित कर लिया।

कृष्णके रूपमें ब्रह्माको मोहित कर लिया। रामके रूपमें गरुड़ मोहित हो गये। जब भगवान् मायाका परदा डाल देते हैं तब सभी मोहित हो जाते हैं। भगवान्का भजन करनेवालेके सामने यह परदा नहीं ठहरता। यह तो भजनका प्रभाव है। मायाकी शक्ति नहीं कि उसे मोहित कर सके। साक्षात् दर्शनका तो क्या पता कितना माहात्म्य है। सूर्यके सामने जिस प्रकार अन्धकार नहीं रह सकता। उसी प्रकार भक्तके आगे माया नहीं रह सकती। परमात्माके आगे अज्ञान या जड़ता कहाँ रह सकती है। मूढ़ोंके सामने ही परदा रहता है। उनकी दृष्टिमें तो परदा है ही नहीं। परमात्माके दर्शन होनेपर भी यदि श्रद्धा-विश्वास न हो तो दूसरी बात है। कृष्णरूपमें भगवान्को कितनोंने ही देखा, किन्तु श्रद्धा-विश्वासके न होनेके कारण भगवान् उनसे छिपे रहे। इसमें अनोखी बात क्या है, उचित ही है, न्याययुक्त है।

यह जो बात बतायी थोड़ी ही बतायी। इन बातोंपर विश्वास हो जाय तो भगवान् बिना मिले रहें ही नहीं। वे आश्चर्य करेंगे कि यह ऐसी चीज है और हम उससे वंचित ही रह गये। विश्वास होना चाहिये कि सहज ही मिल सकते हैं और किसी भी बातकी आवश्यकता नहीं। तीव्र इच्छा होनी चाहिये। बच्चा माँको याद करके रोता है, पुकारता है तो माँ रह नहीं सकती। बहुत-से उपाय करती है, उन्हें यदि ठुकरा देता है तो माँको आना ही पड़ता है। उसी प्रकार भगवान्को भी आना पड़ता है। एक बात और है कि भगवान् तो आतुर रहते हैं। वे कहते हैं किससे मिलूँ। जबतक वियोग सहा जाता है तबतक वे नहीं मिलते। जब उसके बिना ठहर ही नहीं सकता तो भगवान् ठहरते नहीं। तीव्र इच्छा न होनेके कारण ही विलम्ब है। परम श्रद्धासे ही भगवान्की प्राप्ति होती है। परम श्रद्धा किसे कहते हैं?

प्रत्यक्षसे भी अधिक श्रद्धाका नाम परम श्रद्धा है। कलिकालमें तो प्रत्यक्षसे बढ़कर न हो तो प्रत्यक्षकी तरह होनेसे भी कल्याण हो सकता है। श्रद्धा न हो तो भी भगवान् आ सकते हैं, किन्तु अश्रद्धालुके लिये नहीं आते। भगवान् अश्रद्धा सहन नहीं कर सकते, किन्तु दण्ड नहीं देते। आनेमें विलम्ब करना ही दण्ड देना है।

प्रश्न—आपके कहे अनुसार तो भगवान्को न छोड़नेका कारण रूप हुआ।

उत्तर—भगवान्में अनन्त बातें हैं उनमें रूप भी है। यह तो एक बात बतायी। गुणके बाद प्रभाव, प्रभावके बाद तत्त्व, तत्त्वके बाद रहस्य इस प्रकार सीढ़ी-दर-सीढ़ी बढ़ना चाहिये। रूप तो एक बात है, नीची-से-नीची है। रूपके बादमें चरित्र, चरित्रके बादमें गुण, गुणके बाद प्रभाव, प्रभावके बाद रहस्य है। यह तो एक अंशकी बात कही है। उनका चरित्र तो रूपसे आगेकी चीज है। रूपकी ही इतनी सुन्दरता है तो वस्त्र, आभूषण तो इसके भी नीचे हैं। वह तो कहीं भी नहीं ठहरते। रूपपर ही सजाये होते हैं, अतः रूपका ही नाम लिया। भगवान्के रूपको देखकर मोहित हो जाते हैं। रोज भगवान्की चर्चामें तो आगे ही बढ़ना चाहिये। आज स्वरूप, कल लीलाकी नामकी चर्चा करनी चाहिये। भगवान्की लीला अपरम्पार है। उनकी प्रत्येक लीलामें रहस्यका दिग्दर्शन करना चाहिये। गुणके बाद प्रभावका दिग्दर्शन करना चाहिये। दुनियामें भी सारा प्रभाव भगवान्के एक अंशका आभासमात्र है, जिसको हम प्रभावके नामसे कहते हैं। जो-जो प्रभाववाली बातें हैं सब मिलकर परमात्माके मुकाबलेमें एक अंशका ही प्रादुर्भाव है। सारी विभूतियाँ उनके एक अंशका आभासमात्र हैं। सारी दुनियाकी सब बातें मिलकर भगवान्के

स्वरूपके एक अंशका ही प्राकट्य है। कहाँ चेतन? कहाँ जड़? वास्तवमें एक बार दर्शन होगा तो बार-बार नहीं करना पड़ेगा। छूटेगा ही नहीं। भगवान् हृदयसे नहीं जा सकते। दर्शन होनेपर भी यदि भगवान्‌के गुणोंको नहीं समझे तो कुछ भी नहीं है।

चित्रकूट के घाट पर भइ संतन की भीर।
तुलसिदास चंदन घिसें तिलक देत रघुबीर॥

रघुबीर तिलक कर गये, पता नहीं चला। भगवान्‌का मिलना हो, फिर भी पहचानना न हो, यह कितनी दुर्भाग्यकी बात है। पहचान जाय तो ज्ञान और ज्ञान होनेसे श्रद्धा एवं श्रद्धा होनेसे प्रेम होता है, जितना अधिक प्रेम होता है, उतना ही अलग नहीं हो सकते। यह सब कुछ भगवान्‌की लीलाके ही अन्तर्गत है। लीलाके अतिरिक्त स्वरूप कहाँ रह सकता है। स्वरूपके अन्तर्गत लीला नहीं है। लीलासे ही गुणोंका दिग्दर्शन होता है। दया, प्रेम, शान्ति आदि उनमें अनन्त गुण हैं। सभी लीलासे ही समझे जाते हैं। चरित्र तथा नेत्रोंकी चालसे ही प्रेम, दया आदिका पता चलता है। वे दया, प्रेम तथा गुणोंके सागर हैं। इस प्रकार प्रभावके बाद उनके तत्त्वको समझना चाहिये। प्रभावको जानकर यदि तत्त्व नहीं समझा तो कमी ही है। मुक्तिमें कमी नहीं, किन्तु उसके द्वारा दोषयुक्त क्रिया हो सकती है। भगवान्‌का दर्शन अर्जुन नित्य करता था, भगवान्‌को मानता था, उनके प्रभावको जानता था, किन्तु तत्त्वसे नहीं जानता था। भगवान्‌ने विश्वरूप अर्जुनको दिखाया, विश्वरूप दिखानेके बाद भी वह नहीं समझा। अर्जुनके प्रति गीतामें भगवान् कहते हैं—

मा ते व्यथा मा च विमूढभावो दृष्ट्वा रूपं घोरमीदृङ्ममेदम्।
व्यपेतभीः प्रीतमनाः पुनस्त्वं तदेव मे रूपमिदं प्रपश्य॥

(गीता ११। ४९)

मेरे इस प्रकारके इस विकरालरूपको देखकर तुझको व्याकुलता नहीं होनी चाहिये और मूढभाव भी नहीं होना चाहिये। तू भयरहित और प्रीतियुक्त मनवाला होकर उसी मेरे इस शंख-चक्र-गदा-पद्मयुक्त चतुर्भुजरूपको फिर देख।

यदि भगवान्‌को समझ जाते तो फिर व्यथा नहीं होनी चाहिये थी। इससे स्पष्ट होता है कि उसे परमात्माके तत्त्व-रहस्यका पता नहीं था। उसने भगवान्‌का मर्म नहीं समझा। तत्त्वको समझकर, रहस्य समझना अलग है। भगवान्‌को देवता जानते हैं, किन्तु तत्त्व-रहस्य नहीं समझते। परमात्मा क्या हैं, यह बात गरुड़-जैसे भी नहीं समझ सके। काकभुशुण्डि भक्त थे। भक्त शिरोमणि थे। शिवजी भगवान्‌के तत्त्व-रहस्यको समझते थे।

रूपकी प्रधानता है, किन्तु उससे भी बढ़कर गुण-प्रभावकी बात है। भगवान्‌के मिलनेपर हम उन्हें भूल नहीं सकते। दर्शनके पहले अनन्य प्रेम होता है। प्रेमीको प्रेमी भूल नहीं सकता। किसी प्रकारका भी सम्पर्क रखना होगा।

भगवान्‌का स्वरूप अद्‌भुत तथा अलौकिक है। उनके साथ ही सब गुण हैं। सूर्यके दर्शनके साथ प्रकाश, धूप, गर्मी साथ ही होते हैं, उसी प्रकार भगवान्‌के साथ गुण रहते हैं। जितनी कमी है उतनी प्रेमकी ही कमी है। प्रेम अधिक होना चाहिये।

दर्शन हो गये, तत्त्व नहीं समझा तो कमी है, किन्तु वे छोड़ते नहीं, समझाते हैं। प्रभु अपनेपर ही जिम्मेवारी समझते हैं। अर्जुनके उदाहरणसे यह सब समझमें आ सकता है। अर्जुनमें भी जो कमी थी, उसकी भी भगवान्‌ने पूर्ति की, उसे नहीं छोड़ा, वैसे ही हमें भी नहीं छोड़ेंगे।

ध्यान और नामजपकी विधियाँ*

मनसे भगवान्‌के नामका जप और स्वरूपका ध्यान एक साथ कैसे हो सकते हैं? इसके कई प्रकार हैं। सबके लिये एक ही बात नहीं है। जिसकी जैसी प्रकृति है, उसके अनुसार जो बात अनुकूल पड़े, वही साधन करना चाहिये। मनसे भगवान्‌के नामका जप और भगवान्‌के स्वरूपका ध्यान—दोनों एक साथ हो सकते हैं, इसके कई प्रकार हैं—

१. योगदर्शनमें महर्षि पतंजलिने बतलाया है '**तस्य वाचकः प्रणवः**' उस परमात्माका नाम 'ॐ' है और '**तज्जपस्तदर्थभावनम्**' उसके नामका वाणीसे 'ॐ', 'ॐ', उच्चारण होता रहे और मनसे स्वरूपका ध्यान होता रहे। महर्षि पतंजलि परमात्माके निराकार-स्वरूपको माननेवाले हैं, अतएव दोनों काम एक साथ चल सकते हैं।

२. मान लो, साकार भगवान् जैसे श्रीरामचन्द्रजी महाराज आकाशमें विराजमान हैं। चरणोंसे लेकर मस्तकतक ध्यान करे। भगवान्‌ने मस्तकपर चन्दनका लेप कर रखा है। भगवान्‌के नामको कुशसे उनके मस्तकपर लिखो। मनके भावसे भगवान् हैं, यह मान्यता है और तिलक हो रहा है, यह भी मान्यता है। मनसे 'राम' नाम लिख रहे हैं। ये सब मनके ही संकल्प हैं। भगवान्‌के ललाटपर लिख रहे हैं तो भगवान्‌का चेहरा दीख ही रहा है। नाम लिख रहे हैं तो नामका जप तो हो ही रहा है। इस तरहसे मानसिक जप और ध्यान हो सकता है।

३. हम वाणी या श्वाससे 'राम-राम' कहें और सामने या

* प्रवचन—दिनांक २-५-५०, प्रातःकाल ७.३० बजे, वटवृक्ष, स्वर्गाश्रम।

हमारे हृदयमें भगवान् श्रीरामचन्द्रजी विराजमान हैं, उनका दर्शन करें। वाणी या श्वासके द्वारा जप करें और अलग ध्यान करनेमें कोई हर्ज नहीं है।

एक कृष्णका भक्त है। कृष्णकी वह माधुरी मूर्ति मानो ग्यारह-बारह वर्षकी है। भगवान् लीला कर रहे हैं, यह मनसे दीख रहा है या भगवान् वंशी बजा रहे हैं और हम मनसे नाचना-गाना सुन रहे हैं। भगवान्की वंशीके द्वारा नामकी ध्वनि निकलती है। यह मानसिक कानोंके द्वारा सुनें और मानसिक नेत्रोंसे भगवान्को देखें। ऐसे दोनों काम एक साथ चल रहे हैं। ये बुद्धि वृत्तिसे ही देख रहे हैं और सुन रहे हैं। भावसे ऐसा कर रहे हैं। भगवान् ही अपने नामकी ध्वनि वंशीके द्वारा घोषित कर रहे हैं। यह मानसिक कानोंसे सुनायी दे रही है और मनसे माधुरी मूर्ति दीखती है। ऐसे दोनों काम एक साथ हो सकते हैं।

४. भगवान्के नामका मानसिक जप करके फिर ध्यान करे। पहले क्षणमें भगवान्के नामका जप और फिर दूसरे क्षण ध्यान ऐसे हो सकता है। प्रतिक्षण एक-एक काम होवे तो कोई हर्ज नहीं। यदि स्वरूपका ध्यान नहीं रहे तो कोई हर्ज नहीं, क्योंकि नाम और नामीमें कोई भेद नहीं है। नामजपके साथ भगवान्का ध्यान है ही। श्रीतुलसीदासजी कहते हैं—

सुमिरिअ नाम रूप बिनु देखें। आवत हृदयँ सनेह बिसेषें॥

रूपके बिना देखे भी नाम-जप करे तो हृदयमें विशेष प्रेम हो जाता है और प्रेमसे भगवान् मिल जाते हैं।

हरि ब्यापक सर्बत्र समाना। प्रेम तें प्रगट होहिं मैं जाना॥

इस प्रकार शिवजीने देवताओंसे कहा है। शिवजी भगवान्के प्रेमी हैं, उनके लिये भगवान् प्रकट हुए हैं, उनका कहना ठीक है।

५. एकान्तमें बैठकर ऐसा ध्यान लगाये कि हमारे भीतरमें

स्वाभाविक शब्द होता है, वहाँ इष्टदेवके नामको जोड़ दो तो कानसे भगवान्‌का नाम सुनायी देगा। यह समझे कि हृदयमें भगवान्‌का नाम है तो ध्यान भी स्वतः ही है।

६. आकाशमें भगवान् श्रीरामचन्द्रजी विराजमान हैं, हम यह ध्यान कर रहे हैं, साथमें नामजप भी कर रहे हैं, इस प्रकार ध्यान और जप दोनों हो रहे हैं।

शास्त्रोंमें ऐसे अनेक उपाय बताये गये हैं। अपनी-अपनी प्रकृतिके अनुसार रुचि होती है। जिसका जिसपर विश्वास हो, उसको लक्ष्यमें रखकर काममें लाना चाहिये। यही सिद्धान्तकी बात है।

अब एक विशेष बात बतलायी जाती है—जिस समय मनुष्य ज्यादा बीमार पड़ जाय, मरनेके लायक हो जाय तो भगवान्‌के सरल नामका उच्चारण ही सहज हो सकता है। अतएव भगवान्‌के सरल नामका उच्चारण करता रहे तो अन्तमें वह नाम उच्चारण हो सकता है। सरल नाम वह है, जिसमें प्राणवायु थोड़ी खर्च करनी पड़े। 'नारायण' यह अल्पप्राण नाम है। इसको बहुत कालतक जपते रहे तो थकावट नहीं आती। वैसे ही 'ॐ' नाम कड़ा नहीं है। निराकारके उपासकके लिये यह सरल है। नाम बहुत लंबा नहीं हो, क्योंकि अन्तकालमें स्मरण-शक्ति कमजोर रहती है। उस समय पूरा नाम उच्चारण होना कठिन पड़ता है।

दूसरी बात—भगवान्‌के नामका जप और स्वरूपका ध्यान दोनों श्रेष्ठ है, पर दोनोंमेंसे एक भी हो जाय तो अन्तकालमें कल्याण हो सकता है। नामके साथ नामी रहता ही है। जो ध्यान करता है तो ध्येय आ ही जाता है। इस तरह दोनों या दोनोंमेंसे एकका अभ्यास करना चाहिये।

भगवान्‌के स्वरूपके विषयमें बहुत दिनोंसे सुन रहे हैं तो कुछ तो उनका भाव आया होगा, उसको बुद्धिके तन्तुओंमें बैठा दें।

गहरी तहमें ऐसा बैठा दें कि परमात्मा यह चीज है। इस तरह निश्चय कर लिया, बुद्धिमें बैठ गया, उसीका नाम उच्चारण कर रहा है तो नामीको तो बुद्धिकी वृत्तिसे धारण कर रखा है, वह मनके निश्चयमें है, उसीको वाणीद्वारा उच्चारण कर रहे हैं।

कोई भी चीजका तत्त्व समझमें आ जाय तो उसका कोई भी रूप सामने आनेपर वह बात समझमें आ जाती है। जैसे सोनेके आभूषण हैं। सोनेका तत्त्व समझ लिया कि यह सोना ही है। ऐसे ही जलतत्त्वको समझ लिया कि आकाशमें परमाणुरूप जल, भापरूप जल, बादलरूप जल, बूँदोंके, ओलोंके रूपमें जल सब एक जलतत्त्व ही है। यह बात समझ ली कि एक ही जल है, तब जिस चीजको देखोगे, उसको जल ही समझोगे। धातुसे एक समझ लेनेपर जलका कोई भी रूप सामने आये, वह जल ही दीखेगा।

वैसे ही निर्गुण निराकारका तत्त्व समझ ले। वही क्षमा, दया, शान्ति आदि दिव्य गुणोंसे सम्पन्न हो तो सगुण निराकार परमात्माका स्वरूप है। वही जब महान् प्रकाशके रूपमें, ज्योतिके रूपमें आते हैं तब साकार बन जाते हैं और वे ही राम, कृष्ण आदिके रूपमें आते हैं। यह परमात्माका साकाररूप है।

साकारस्वरूप, ज्योतिस्वरूप निराकार, सगुण निराकार, निर्गुण निराकार—सब रूप एक हैं। ऐसा बुद्धिसे समझ ले तो वह चीज मौजूद रहते हुए नाम सुनायी दे तो ध्यानसहित जप है ही। बुद्धिमें जो निश्चय है, साथ-साथ मनसे भी उद्गार होते रहें। बुद्धिमें तात्त्विकभाव डटा रहे तो कोई हर्जकी बात नहीं। परमात्मा क्या वस्तु है, यह बात बुद्धिमें बैठ गयी, मनमें उसीका उद्गारकी ज्यों निकल रहा है तो यह वही चीज है जो बुद्धिमें है। बुद्धिमें जमाव है और मनमें उद्गार भी है। मानसिक वृत्तिके

द्वारा जप हो रहा है, उसमेंसे शब्द अपने-आप ही उच्चारण हो रहा है। नामीका ज्ञान तो बुद्धिमें बैठा है। नामका उच्चारण सुन रहे हैं तो नामके साथ-साथ नामीका स्मरण करें। यदि स्मरण नहीं हो तो भी नामीका नाम हृदयमें जमा हुआ ही है। जैसे कस्तूरी आदि सुगन्धित पदार्थकी गन्ध आ रही है। गन्ध आ रही है तो कस्तूरी है ही। कस्तूरी और गन्ध एक है, वैसे ही नाम और नामी भिन्न नहीं हैं। साकार, सगुण निराकार और निर्गुण तीनों एक हैं। पुष्प और गन्धमें भेद नहीं, चन्द्रमा और चाँदनीमें भेद नहीं, दोनों मिलकर एक हैं। भगवान्‌के समग्ररूपका ध्यान हो गया, समग्रका तत्त्व समझकर स्मृति हो गयी तो बड़ी अच्छी बात है, पर साकार या निराकार मान लो, एकदेशीय है, पर है तो भगवान्‌का ही। भगवान्‌के चरण चाहे मुख किसीका भी ध्यान करे, यह एकदेशीय होते हुए भी है तो भगवान्‌का ही। यह ध्यान भगवान्‌का है। यह बात भगवान् स्वीकार कर लेते हैं। इसमें यदि कमी रही तो पूर्ति भगवान् करेंगे और करते भी हैं। अपने जिम्मेदारी क्यों लें। वास्तवमें सोचें तो यह बात ठीक है कि जो ध्यान होता है, वह भगवान्‌की कृपासे होता है। दिनभर संसारकी स्मृति है, पर भगवान्‌की स्मृति हो, यह भगवान्‌की दया है। जब विशेष स्मृति हो तो भगवान्‌की विशेष दया है। यह विश्वास रखना चाहिये कि यह स्मृति और बढ़ेगी। आशा रखे कि बढ़ेगी तो बढ़ती ही दीखेगी, क्योंकि भगवान् तो दयावान् हैं, सर्वसमर्थ हैं। जो भगवान्‌पर निर्भर रहता है, उसको भगवान् समझा देते हैं। यह बात सिद्धान्तसे है और युक्तिसे है तथा करके भी देख सकते हैं।

भगवान्‌का स्वरूप अमृतमय, आनन्दमय, रसमय, प्रेममय है। ये सब विशेषण हैं और वह विशेष्य है, वह ऐसी चीज है

इसलिये हृदयमें वह जमा होनी चाहिये। जब वह जमा हो जाती है तो बुद्धिके तन्तुओंमें जितनी जमा हो गयी, वह निकालनेसे भी नहीं निकलती। उसका विरोधी खड़ा हो तो वह और बढ़ेगी। जैसे मीराबाई और प्रह्लादके विरोधी खड़े हुए तो उनकी जमावट और बढ़ी। परमात्माके स्वरूपकी जमावट हो जाय तो विरोधी खड़ा होनेपर वह जमावट नहीं छूट सकती। हृदयमें यह लगन लग जाय, बुद्धिके तन्तुओंमें गहरा बैठ जाय कि भगवान् माधुर्यमय, प्रेममय हैं, मीठे हैं तो उसको मिठासकी गन्ध मिलती ही रहती है। यदि मिठासकी गन्ध नहीं मिले तो अभी मिठास गहरा नहीं है। दृढ़ अभ्यास हो जाय तो वह स्वभावसिद्ध हो जाता है। परमात्माके विषयकी बात जो एक बार हृदयमें बैठ गयी, उसको बदल नहीं सकते, उसको बढ़ा तो सकते हैं। परिवर्तन करनेसे उसको दुःख होता है। जो बात मन तथा बुद्धिमें प्रविष्ट हो जाती है, उसके लिये फिर परिश्रम नहीं करना पड़ता।

आप एक घंटा ध्यान करने बैठते हैं तो उनसठ मिनट मन-बुद्धिकी वृत्तिमें संसारका ध्यान होता है, उसके लिये अभ्यास करना नहीं पड़ता—स्वतः ही स्फुरणा होती है। इसी तरह भगवान् जब बुद्धि और हृदयमें बैठ जायँगे तो दूर करनेपर भी नहीं हटेंगे। जब हृदयमें आदर दोगे तो वह बात बैठेगी। भगवान्‌के समान कोई चीज नहीं। संसारकी स्फुरणा कूड़ा-करकट है, उसको हटाना है तो वह कूड़ा-करकट अधिक दिन नहीं टिकेगा। पर वह बात चित्तमें खटकनी चाहिये, फिर वह बात ज्यादा दिन नहीं टिकेगी। परमात्माके गुण-प्रभावकी तरफ लक्ष्य होकर मित्रता होगी तो उसको भुला नहीं सकोगे। वह बुद्धिमें ऐसा प्रवेश कर जायगी कि वहीं बुद्धि रुक जाती है। परमात्माके ध्यानके विषयमें एक अकल्पित बात हो जाती है।

वहाँ स्मृतिमात्रसे तुरन्त ही ध्यान हो जाता है। भगवान्‌का जो ध्यान करता है, वह कल्पना करता है, वहाँ कल्पना वृत्ति है, अतएव वह कल्पित भाव है, वह ज्यादा दिन टिक नहीं सकता। जब बात बुद्धिके समझमें आ गयी, वह हट नहीं सकती। जब हर समय परमात्माका ध्यान रहे तो हर समय प्रसन्नता, शान्ति उत्पन्न होती रहती है। उस समय उसको आगमें डाल दो तो भी उसकी प्रसन्नताका कोई ठिकाना नहीं है। जैसे प्रह्लादजीके लिये आग शीतल है, क्योंकि वह आग प्रह्लादजीके लिये सच्चिदानन्दमय है। अतएव आग उन्हें जलावे कैसे? भगवान्‌के साथ प्रेम हो जाय तो भय नहीं है।

बुद्धिके तन्तुओंमें जो बात प्रविष्ट हो गयी, उसका मनन नहीं भी हो तो कोई बात नहीं। पर मनन करना महत्त्वकी चीज है, नामका जप करना चाहिये। यह बात हृदयमें जगती रहे, नामजप नहीं हो तो भी कोई बात नहीं, यहाँ नामजपकी अवहेलना नहीं है। नामजप वाणीसे भी हो—यह कोशिश करनी चाहिये।

परमात्माके स्वरूपके विषयमें जो आप सुनते हैं, पढ़ते हैं, उसपर श्रद्धा-विश्वास करना चाहिये। उसको बार-बार याद करके ताजा बनावे और बुद्धिके विचारोंको पुष्ट करे। जहाँतक समझ चुके, वहाँतक समझकी मात्रा बढ़ावे और जहाँतक विश्वास हुआ है, उसकी भी मात्रा बढ़ावे। शब्द सुना कि परमात्मा सच्चिदानन्दघन हैं, उनको बुद्धिमें बैठावे। परमात्माका स्वरूप दिव्य है—

कविं पुराणमनुशासितारमणोरणीयांसमनुस्मरेद्यः।
सर्वस्य धातारमचिन्त्यरूपमादित्यवर्णं तमसः परस्तात्॥

(गीता ८। ९)

जो पुरुष सर्वज्ञ, अनादि, सबके नियन्ता, सूक्ष्मसे भी अति

सूक्ष्म, सबके धारण-पोषण करनेवाले, अचिन्त्यस्वरूप, सूर्यके सदृश, नित्य चेतन प्रकाशरूप और अविद्यासे अति परे, शुद्ध सच्चिदानन्दघन परमेश्वरका स्मरण करता है।

यह परमात्माके दिव्य स्वरूपकी व्याख्या है। इसको समझकर बुद्धिमें प्रवेश कराया। वह आनन्दमय है, यह भी सुना, पूर्णानन्द, अपार आनन्द—ऐसे उस परमात्माकी सत्ताकी व्याख्या सुनी।

ये त्वक्षरमनिर्देश्यमव्यक्तं पर्युपासते।
सर्वत्रगमचिन्त्यं च कूटस्थमचलं ध्रुवम्॥
सन्नियम्येन्द्रियग्रामं सर्वत्र समबुद्धयः।
ते प्राप्नुवन्ति मामेव सर्वभूतहिते रताः॥

(गीता १२। ३-४)

परन्तु जो पुरुष इन्द्रियोंके समुदायको भली प्रकार वशमें करके मन-बुद्धिसे परे सर्वव्यापी, अकथनीय स्वरूप और सदा एकरस रहनेवाले, नित्य, अचल, निराकार, अविनाशी सच्चिदानन्दघन ब्रह्मको निरन्तर एकीभावसे ध्यान करते हुए भजते हैं, वे सम्पूर्ण भूतोंके हितमें रत और सबमें समान भाववाले योगी मुझको ही प्राप्त होते हैं।

उसी प्रकार चेतनस्वरूप परमात्माकी व्याख्या सुनी—

ज्योतिषामपि तज्ज्योतिस्तमसः परमुच्यते।
ज्ञानं ज्ञेयं ज्ञानगम्यं हृदि सर्वस्य विष्ठितम्॥

(गीता १३। १७)

वह परब्रह्म ज्योतियोंका भी ज्योति एवं मायासे अत्यन्त परे कहा जाता है। वह परमात्मा बोधस्वरूप, जाननेके योग्य एवं तत्त्वज्ञानसे प्राप्त करनेयोग्य है और सबके हृदयमें विशेषरूपसे स्थित है।

फिर प्रकट होनेकी बात सुनी कि राम, कृष्ण या विष्णुका

स्वरूप इस प्रकारका है। सुनकर सब बात इकट्ठी की और वह भगवान्‌का समग्ररूप बना। इस प्रकार समग्ररूप समझकर समग्रका या किसी भी एक अंशका ध्यान करो, वह सब-का-सब भगवान्‌का ही रूप है। चाहे भगवान्‌के नाखूनका ही ध्यान क्यों न करो, वह भगवान्‌का ही ध्यान है। जैसे पतिव्रता स्त्रीको अपने पतिका हाथ-पैर सभी अंग प्यारे ही लगते हैं, इसी प्रकार सभी स्वरूप एक परमात्माके ही हैं तो भक्तको सब-का-सब रूप प्यारा ही लगता है। उसकी यह बुद्धि है कि सब परमात्माका स्वरूप है। सगुण, निर्गुण, साकार, निराकार सब परमात्माका स्वरूप है। सब प्रसन्नता और आह्लादित करनेवाले हैं, इस प्रकार परमात्माके तत्त्वको समझ लेना चाहिये। सोनेके तत्त्वको जाननेवालेको सोनेका टुकड़ा किसी भी आकृतिमें दे दो, उसकी सुवर्ण बुद्धि ही रहेगी। जैसे-जैसे सोना मिलता है, वैसे-वैसे प्रसन्नता होती है। वैसे ही परमात्माका कोई भी स्वरूप है, दिव्य गुणोंसे सम्पन्न साकार-निराकारके रूपमें कोई भी भेद प्रतीत नहीं होता। जो भगवान्‌के किसी भी स्वरूपकी या अंगकी निन्दा करता है, वह वास्तवमें भगवान्‌के तत्त्वको समझा नहीं। हमारे प्रभुका कोई भी अंग निन्दा करनेयोग्य नहीं है।